१० मारकिस आफ हेस्टिंग्ज १८१३—१८२३
लार्ड एम्हर्स्ट १८२३—१८२८ १३८—१४५
११ लार्ड विलियम बैंटिक १८२८—१८३५
सर चार्लस मेटकाफ १८३५—१८३६ १४६—१५५
१२ लार्ड आकलैंड १८३६—१८४२
लार्ड एलेनबरा १८४२—१८४४ १५६—१६१
१३ लार्ड हार्डिंग पहला १८४४—१८४८
लार्ड डलहौजी १८४८—१८५६ १६२—१७१
लार्ड कैनिंग १८५६—१८५८ १७२—१८०

खण्ड तीसरा

ब्रिटिश-शासन के प्रबन्ध में भारत

१५ लार्ड कैनिंग १८५८—१८६२
से
लार्ड लिटन १८७६—१८८० १८१—१९३
१६ लार्ड रिपन १८८०—१८८४
से
लार्ड कर्जन १८९९—१९०५ १९४—२०७
१७ लार्ड मिन्टो दूसरा १९०५—१९१०
से
लार्ड चैम्सफोर्ड १९१६—१९२१ २०८—२२१
१८ लार्ड रीडिंग १९२१—१९२६
से
लार्ड लिनलिथगो १९३६— २२२—२४०

भारतवर्ष का इतिहास

खण्ड १

भारत में स्वतन्त्र शक्तियों का उत्थान

१७१९—१८०५

पहला अध्याय

भारत में पहली यूरोपीयन वस्तियां

संसार के अन्य देशों के साथ भारतवर्ष के व्यापारिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से स्थापित हैं। पश्चिम में ईरान, अरब, और मिश्र के साथ इसके व्यापारिक सम्बन्ध बहुत ही प्राचीन हैं। जिस समय यूरोप में रोमन साम्राज्य का सूर्य कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान था, उस समय रोम सागर के आस-पास के सारे देश इस साम्राज्य के अंतर्गत थे। उस समय भारत के व्यापारिक पदार्थों—मसाले, लाल मिर्चें, रेशमी तथा सूती माल—की यूरोप की मण्डियों में खूब बिक्री होती थी। यह समस्त व्यापारिक माल ३ मार्गों के द्वारा यूरोप पहुंचता था। एक मार्ग तो पूर्ण रूप से स्थल में से होकर था। यह मार्ग पंजाब से

भारत और यूरोप के मध्य पुराने व्यापारिक मार्ग

पेशावर, दर्रा खैबर, काबुल और हिरात होकर अथवा मुल्तान, दर्रा बोलान, कन्धार, और हिरात होकर ईरान, वर्तमान टर्की और कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) को जाता था। दूसरा मार्ग कुछ स्थल पर से और कुछ समुद्रों पर से था। सूरत अथवा सुपारका (बम्बई के पास) के बंदरगाह से भारतीय माल अरब सागर, और फ़ारस की खाड़ी में से होता हुआ बसरा पहुँचता था। वहा से फुरात के मार्ग से बगदाद, दमश्क, और अलप्पो होता हुआ रोमसागर के बन्दरगाहों मे पहुँचता था। तीसरा रास्ता पूर्ण रूप से जल मार्ग का था। कालीकट, सुपारका, सूरत और बड़ौच से भारत का माल लादा जाकर अरबसागर और लालसागर को पार कर मिश्र होता हुआ रोमसागर के बन्दरगाहों काहिरा (Cairo) और सिकन्दरिया (Alexandria) पहुंचाया जाता था। कुस्तुन्तुनिया, अलप्पो और सिकन्दरिया की मण्डियो मे वेनिस और जेनोआ के सौदागर भारत के माल खरीद कर समस्त यूरोप मे जाकर बेचा करते थे। शताब्दियो तक यही क्रम जारी रहा। जब अरब शक्तिशाली हुए और मध्य एशिया, ईरान मेसोपोटामिया, वर्तमान टर्की, सीरिया तथा मिश्र में उनका साम्राज्य फैला, उस समय भी इन तीनों व्यापारिक मार्गों का उपयोग किया जाता रहा। परन्तु जब १३वीं और १४वीं शताब्दी में तुर्क लोगो ने अरबो के मध्यवर्ती पूर्वीय साम्राज्य पर अधिकार कर लिया और तुर्कों का साम्राज्य भारत से लेकर बालकान-राज्यो तक फैल गया, तब यह तीनो व्यापारिक मार्ग बन्द हो गए और भारत के माल का यूरोप पहुंचना कठिन हो गया।

जब इस प्रकार तुर्कों ने भारत और यूरोप के व्यापारिक मार्गों को बन्द कर दिया, तब यूरोपियन सौदागरों ने

भारत के नए जल मार्ग की खोज

भारत के माल को यूरोप लाने के लिए कुछ अन्य उपाय सोचने शुरू किए। वे ऐसे मार्ग की खोज करने लगे जो कि तुर्कों के राज्य में से होकर न गुजरता हो। इसी समय कुछ यूरोपियन वैज्ञानिकों ने यह बताना शुरू कर दिया था कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल है। यदि यह बात वास्तव मे सच है तो पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए पूर्वीय देशों में पहुंच सकना सम्भव है। कुछ जल यात्रियो ने यह भी सोचा कि यूरोप के दक्षिण में स्थित अफरीका महाद्वीप (African Continent) का कहीं न कहीं अन्त अवश्य होगा। यदि कोई दक्षिण में अफरीका के पश्चिमी तटो के साथ साथ यात्रा करे, तो कभी न कभी वह अफरीका महाद्वीप के अन्तिम सिरे पर अवश्यमेव पहुँच जाएगा और वहा से पूर्व की ओर भारत के लिए रास्ता अवश्य होगा। उन विचारों के अनुसार पश्चिमी यूरोप के जल-यात्रियों ने पश्चिम तथा दक्षिण की ओर यात्राएं आरम्भ कर दीं। उस समय यूरोप के लोग भारत का नया मार्ग ढूंढ सकने के लिए इतने लालायित थे कि यूरोप के प्रत्येक देश ने इसकी खोज शुरू कर दी। कोलम्बस (Colombus) नामक, जेनोआ के एक मल्लाह को, स्पेन की सरकार ने धन की सहायता दी और वह भारत की खोज करने के लिये एटलाण्टिक महासागर के पार पश्चिम की ओर चल पड़ा। भारत की खोज करते हुए वह अकस्मात् सन् १४९२ में नई दुनिया, जिसे आजकल अमरीका के नाम से पुकारते हैं, जा पहुंचा। इस प्रकार अमरीका के दो महाद्वीप स्पेन के अधिकार में हो गए और बहुत सा सोना और चादी उसके हाथ लगी।

जिस समय स्पेन पश्चिम-सागर में से होकर भारत का मार्ग खोज रहा था, उसी समय पुर्तगाल वाले भी दक्षिणमार्ग

वास्कोडिगामा से अफ्रीका महाद्वीप के चारों ओर चक्कर काट कर भारत पहुचने का यत्न कर रहे थे । अन्त

[वास्कोडिगामा]

में उनका प्रयत्न सफल हुआ । वास्कोडिगामा (Vasco Da Gama) नामक एक पुर्तगालवासी सन् १४८७ मे अफ्रीका महाद्वीप के सब से दक्षिण सिरे पर जा पहुचा । यहा से पूर्व की ओर मुड़ कर अफ्रीका महाद्वीप के तट के साथ साथ चलता हुआ वह मोजम्बिक पहुचा और भारत से आने वाले व्यापारियों के साथ उसका समागम हुआ । यहा से वह एक भारतीय

व्यापारी के साथ हो लिया और अरब-सागर की यात्रा करता हुआ सन् १४९८ में, मालाबार तट पर स्थित कालीकट के बन्दरगाह पर आ पहुंचा। यूरोपियनों के प्रयत्न सफल हुए। कालीकट के तत्कालीन राजा जमोरिन ने पुर्तगाली-यात्री वास्कोडिगामा का स्वागत किया। उसे देश में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। पुर्तगाल वाले पुर्तगाल को सीधा माल ले जाने लगे।

भारत में पोर्चगीज बस्तियां

जब इस प्रकार पुर्तगालवालों ने यूरोप और भारत के मध्य जल-मार्ग मालूम कर लिया, तो स्वाभाविक रूप से भारत का समस्त व्यापार उनके हाथों में पहुच गया। उन्होंने अफ्रीका और भारत के समुद्र-तटों पर बहुत सी कोठिया कायम कीं। सन् १५०८ मे एलबुकर्क को भारत-स्थित कोठियों का गवर्नर बनाकर भारत भेजा

का पक्षपाती था। उसने उत्तर यूरोप के प्रोटेस्टैंटों (Protestants) पर युद्ध की घोषणा कर दी थी। पुर्तगालवालो के बन्दरगाह मे आने वाले प्रोटेस्टैंट व्यापारियो पर कड़े बंधन लगा दिये गये थे। अन्य सौदागरो ने इस स्थिति से लाभ उठाकर भारतीय चीज़ों की कीमत बढा दी। यूरोप की मण्डियो मे भारत का माल बहुत महंगा हो गया। इस समय तक इंगलैंडवाले भारतीय माल के व्यवहार करने के अभ्यस्त हो गये थे। उन्होंने भारत के माल को स्वयं लाने की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने डच लोगो को इस बात के लिये उत्साहित किया कि स्पेन-वालों के साथ युद्ध जारी रखें। सन् १५८८ मे स्पेनिश-आर्मेडा (Spanish Armada), जो इंगलैंड के विरुद्ध भेजा गया था, आंधी से बिखर गया और उत्तर सागर में नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस प्रकार स्पेन की जल शक्ति जाती रही और भारत का व्यापार भी उनके हाथों से निकल गया।

डचों का उत्थान

पुराने समय में वेनिस और जेनोआ के बन्दरगाहो से होकर भारत का माल—फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम और हालैण्ड आदि—यूरोप के विभिन्न देशों में पहुंचा करता था। इस प्रकार ब्रिटिश द्वीप-समूह (British Isles) का नम्बर सब से बाद को आता था। परन्तु जब भारत का माल पुर्तगाल के बन्दरगाहो से यूरोप के अन्दर प्रदेश में जाने लगा तब भूमध्य-सागर के स्थान पर बिस्के की खाड़ी (Bay of Biscay) व्यापारिक-केन्द्र बन गई। अब भारतीय माल यूरोप में बांटने के लिए एटलांटिक महासागर के पूर्वी किनारे से होकर आने लगा इससे फ्रांसीसियों अंग्रेजो और डच लोगों को बड़ा लाभ हुआ। इन लोगों को समुद्री-व्यापार में उन्नति करने का अवसर मिला।

क्योंकि इस समय उत्तर-सागर (North sea) का मछलियों का व्यापार डच लोगों के हाथ में था, अतः सब से पहले इन्हीं लोगों ने भारत के व्यापार में हिस्सा लेना शुरू किया। वे पुर्तगाल के बन्दरगाहों को जाने लगे और वहां से फ्रांस, इङ्गलैण्ड, बेलजियम, जर्मनी, स्वीडिन तथा नार्वे के बंदरगाहों में भारतीय माल पहुँचाते थे। जब सन् १५८८ में स्पेन की जल-शक्ति छिन्न-भिन्न होगई, तब डच, अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसियों ने भारत से सीधा माल लाने के लिए अपनी अपनी कम्पनियां स्थापित कर ली थीं। डच इस व्यापार में पहले से ही लगे होने के कारण, वे ही सर्व-प्रथम पूर्व में आए। कुछ ही वर्षों में उन्होंने पुर्तगाल वालों की समस्त बस्तियों पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार स्पेन वालों का समस्त पूर्वी व्यापार मारा गया। डच लोगों ने अधिकतर दक्षिण अफ्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा तथा पूर्वीय द्वीप समूह (East-Indian Archipelago) में अपनी बस्तियां स्थापित कीं क्योंकि वहां मसाले दुनिया में सब से अधिक पैदा होते हैं। भारत में उन्होंने अपनी बस्तियां बहुत कम बनाईं। डच लोगों के साथ साथ अंग्रेज भी पूर्व में आने लगे। परिणामतः वे डच लोगों के प्रतिद्वंद्वी हो गए। अंग्रेजों ने भी ईस्ट इण्डीज़ (East Indies) में अपनी कोठियां स्थापित कीं। परन्तु सन् १६२३ में अम्बोयना (Amboyna) में डच लोगों ने बहुत से अंग्रेज व्यापारियों को मार डाला और उन्हें इन द्वीपों से भगा दिया। इस घटना के बाद अंग्रेज व्यापारियों ने अपना ध्यान भारत की ओर केन्द्रित किया। भारत में डच लोगों की मुख्य कोठी चिनसुरा (बंगाल) में थी।

सन् १६०० में इंग्लैंड के कुछ व्यापारी महारानी एलिज़ाबेथ से [illegible] पूर्व और भारत के साथ व्यापार करने के लिए अधिकार-पत्र (Charter) प्राप्त करने

अंग्रेजों की [illegible]

की प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और तब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गई। सन् १६१२ मे अंग्रेजो ने सूरत मे पहले पहल अपनी कोठी स्थापित की। जहागीर के दरबार मे अंग्रेज राजदूत थामस रो (Thomas Roe) ने अंग्रेजो के लिए मुगल-राज्य मे व्यापार करने के लिए कुछ व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कर ली थी। सन् १६२८ मे पूर्वी तट पर मसुलीपटम मे उन्होने अपनी कोठी स्थापित की। सन् १६३४ मे बगाल के सूबेदार शाहशुजा से उन्होने हुगली मे व्यापारिक कोठी बनाने की आज्ञा प्राप्त की। सन् १६३९ मे दक्षिण मे उन्होने चन्द्रगिरि के राजा रंग रायलु से, जो विजयनगर के प्राचीन राजाओ का वंशज था, थोडी सी भूमि खरीदी, जिस पर वर्तमान मदरास बसा हुआ है। सन् १६६८ मे इंगलैंड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय ने बम्बई का द्वीप, जो उसे पुर्तगाल की राजकुमारी कैथेराइन ब्रगांजा के साथ विवाह होने पर दहेज मे मिला था, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया। सन् १६८० मे मुगल-सम्राट् औरंगजेब ने एक फर्मान द्वारा बंगाल प्रान्त मे व्यापार करने की उन्हे आज्ञा दी। परन्तु १६८६ मे किसी कारणवश अंग्रेजो ने उन जहाज़ो पर कब्ज़ा कर लिया जिनमे मुसलमान हाजी सूरत से मक्का की हज को जा रहे थे और इधर बंगाल की खाडी पर बसे चटगांव नगर पर भी आक्रमण किया। औरंगजेब इस पर बहुत नाराज़ हुआ और अंग्रेजो को बंगाल से निकाल दिया। कुछ दिनो के बाद औरंगजेब ने उन्हे फिर देश मे व्यापार करने की इजाज़त दे दी। परिणामतः सन् १६९० मे कलकत्ता नगर की नींव डाली गई। सन् १६९८ मे उन्होने तीन गावो की जमींदारी प्राप्त की और उन्ही पर कलकत्ता नगर बसाया गया। सन् १७१४ मे उन्होने मुगल-सम्राट् फर्रुखसियर से कलकत्ता के दक्षिण २४ परगना की जमींदारी के

अधिकार प्राप्त किए। परन्तु प्रान्तीय सूबेदार मुर्शिदकुली खा ने, जो इस समय तक पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया था, अंग्रेज़ी कम्पनी को इन परगनों की ज़मींदारी खरीदने की इजाज़त न दी।

फ्रांसीसी बस्तियां

सब से पहली फ्रासीसी वस्ती, सन् १६७४ मे दक्षिण भारत मे पाडेचरी में स्थापित हुई। बंगाल में उन्होंने चन्द्रनगर में व्यापारिक कोठी बनाई। दक्षिण मे उनकी दो और बस्तिया थीं—कारीकल और माही।

यूरोप की व्यापारिक कम्पनियो का राजनीतिक शक्तियो मे परिवर्तित होना

जब तक मुग़ल-साम्राज्य स्थिर रहा, तब तक इन कम्पनियो ने अपनी हलचलें व्यापार तक ही सीमित रखीं। परन्तु जब औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य शीघ्रतापूर्वक पतन की ओर अग्रसर होने लगा तब शासन-प्रबंध मे सैकड़ों बुराइया पैदा हो गई और देश मे गडबड़ फैल गई। राज्य लोगो के जान-माल की रक्षा करने मे असमर्थ हो गया। ऐसी परिस्थितियो ने यूरोपियन व्यापारियों को विवश किया कि वे अपनी कोठियो की रक्षा के लिये क़िले बनाएँ और सेना रखें। यहीं से भारतीय सिपाही का आरम्भ हुआ। इन सिपाहियों को यूरोपियन लोग ड्रिल व कवायद कराते और सैनिक शिक्षा देते थे। लड़ाई के आधुनिक अस्त्र-शस्त्रो से इन्हें सज्जित किया गया था। अत यूरोपियन बस्तियो की रक्षा के लिये इनकी एक बहुत अच्छी सेना तैयार हो गई। स्थानीय सरदारों मे पारस्परिक लडाइया शुरू हुई तब यहा भारतीय सिपाही शत्रु का सामना करने के लिए अधिक योग्य और उपयोगी सिद्ध हुए। इसलिए इन सरदारों ने यूरोपियन व्यापारियों की सैनिक सहायता लेनी शुरू कर

दी। इस प्रकार धीरे-धीरे यूरोप की व्यापारिक कम्पनिया देश के राजनीतिक विषयों में भाग लेने लगीं। परिणामत यूरोपियन व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे के राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी भी बन गये।

प्रश्न

१ यूरोप और भारत के मध्य प्राचीन व्यापारिक मार्गों का वर्णन करो और बताओ कि किन परिस्थितियों के कारण वे बन्द हो गये।

२. अमरीका का कब और कैसे पता लगा ?

३ यूरोप से भारत आने के जल मार्ग की खोज किसने और कब की।

४ भारत की पोर्चगीज बस्तियों का वर्णन करो।

५ पूर्व की डच बस्तियों का वर्णन करो।

६ भारत की अंग्रेजी व्यापारिक बस्तियों का वर्णन करो।

७ भारत की फ्रांसीसी बस्तियों का वर्णन करो।

८ बताओ कि किन परिस्थितियो में पड़ कर यूरोपियन व्यापारी भारत के राजनीतिक विषयों मे भाग लेने लगे।

९ भारत की प्रथम यूरोपियन बस्तियों—पोर्चगीज, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी—का संक्षिप्त वर्णन करो। अन्त में अंग्रेज़ किस प्रकार अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हुये और अन्य लोग क्यों असफल रहे ?

(प यू १९१६)

१०. वास्कोडिगामा के सम्बन्ध मे तुम क्या जानते हो ?

(पं यू १९२४, १९२५)

११ अल्बुकर्क के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त नोट लिखो।

(पं. यू १९२७)

दूसरा अध्याय

मरहठा-साम्राज्य १७१९-१७६१

पश्चिम भारत में मरहठा स्वराज्य

सन् १७०७ मे औरंगज़ेब की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों में तख्त के लिए युद्ध छिड गया। शाहज़ादा मुअज्ज़म ने, जो उस समय काबुल का शासक था, उत्तर की ओर से कूच कर दिया। शाहज़ादा आज़म मालवा की सेना तथा अपने पिता औरंगज़ेब की बची-खुची सेना को लेकर दक्षिण से उत्तर की ओर आगरा की तरफ बढा। इस समय तक दक्षिण में मरहठों का दमन न होने पाया था, बल्कि दिन प्रतिदिन जोर पकडते जाते थे। अत डर था कि शाही सेनाओं के उत्तर की ओर जाते ही समस्त दक्षिण पर मरहठे अधिकार कर लेंगे और दक्षिण-प्रदेश मुगल-शासन से सदैव के लिए निकल जाएगा। ऐसा समझ कर दक्षिण के सूबेदार जुलफिकार खां ने एक चाल चली। उसने शाहजादा आजम को सलाह दी कि साहू को छोड दे और उसे सतारा तथा कोलहापुर का राजा स्वीकार करने के साथ साथ गोण्डवाना, गुजरात-काठियावाड, तंजौर (दक्षिण भारत) की जागीरें भी उसे सौंप दी और दक्षिण के ६ मुगल परगनों से चौथ तथा सर्देशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया। बदले मे साहू ने दक्षिण मे शान्ति रखने की ज़िम्मेवारी ली। परन्तु राज्य-प्राप्ति के लिए लडे जाने वाले इस युद्ध मे शाहज़ादा आज़म और शाहज़ादा कामबख्श

दोनों मारे गए और शाहजादा मुअज्जम शाहआलम का नाम धारण कर हिन्दुस्तान की गद्दी पर बैठा। जुलफ़िकार खां को क्षमा कर दिया गया और वह नए सम्राट् का नौकर होगया। जुलफ़िकार खां की सलाह पर नए बादशाह शाहआलम ने भी इस शर्त पर साहू को दक्षिण के ६ मुगल सूबों से चौथ वसूल करने का अधिकार दिया कि मुगल-सूबेदार दाऊदखां इसे वसूल कर साहू को सौंप दिया करेगा। मुगलों को विश्वास था कि साहू के छुटकारे और राजा बनने से मरहठों में पारस्परिक युद्ध छिड़ जायगा, क्योंकि शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम की विधवा रानी ताराबाई साहू का अधिकार कभी स्वीकार न करेगी। मुगलों ने जो सोचा था वही हुआ। मरहठों में कुछ समय के लिए गृह-कलह छिड़ गई। इस गृह-युद्ध में बाला जी विश्वनाथ की सहायता से, जो कोंकण-प्रदेश का एक ब्राह्मण था साहू को विजय प्राप्त हुई। साहू समस्त मरहठा प्रदेश का राजा हुआ और राजाराम के पुत्र शम्भा जी को कोल्हापुर की जागीर मात्र दी गई। इन सेवाओं के बदले में सन् १७१३ में, बालाजी विश्वनाथ को पेशवा (प्रधान मंत्री) का पद मिला। सन् १७२० तक वह पेशवा रहा।

चौथ और सर्देशमुखी

चौथ वह कर था, जिसे मरहठा लोग उन प्रदेशों से वसूल करते थे जिन पर वे अपना राज्याधिकार समझते थे। यह प्रायः आय का चतुर्थांश हुआ करता था। सर्देशमुखी वह कर था जिसे मरहठा लोग उन प्रदेशों से वसूल करते थे जिनमें शान्ति-स्थापना की वे जिम्मेवारी लेते थे। यह कर आय का प्राय दशमांश हुआ करता था।

शाहआलम ने केवल ५ वर्ष तक राज्य किया। सन् १७१२ में

मरहठा और दक्षिण के मुग़ल

उसकी मृत्यु के पश्चात् सैयद भाइयों की सहायता से फर्रुख़सियर सन् १७१३ में गद्दी पर बैठा। फर्रुख़सियर शीघ्र ही सैयद भाइयों के शासन से व्यग्र हो उठा और उनसे छुटकारा पाने के उद्देश से उसने सन् १७१६ में सैयद हुसेनअली को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेज दिया और साथ ही प्रथम सूबेदार दाऊद खां को गुप्त रूप से यह आदेश दे दिया कि वह हुसेनअली का विरोध करे और उसे मरवा डाले। यह गुप्त आदेश पाकर दाऊद खां, हुसेनअली के दक्षिण में प्रवेश करते ही, मरहठा सरदारों को साथ लेकर उसके विरुद्ध चल पड़ा। लड़ाई हुई, परन्तु इस युद्ध में दाऊद खां ही काम आया। हुसेनअली दक्षिण का सूबेदार बन गया। नये सूबेदार का सब से पहला काम मरहठों के उत्पात को दबा कर देश में शान्ति की स्थापना करना था। उन दिनों सूरत से लेकर समुद्र के किनारे-किनारे बरहानपुर तक पक्की सड़क बनी हुई थी। दक्षिण तथा उत्तर-भारत का समस्त व्यापारिक माल इसी मार्ग से सूरत पहुँचा करता था। जब मरहठों ने औरंगज़ेब के विरुद्ध स्वाधीनता का संग्राम आरम्भ किया तो उन्होंने यह सड़क बन्द कर दी। बिना चौथ लिये कोई भी इस सड़क पर से गुजरने नहीं पाता था। सैयद हुसेन ने उनके विरुद्ध सेना भेजी, परन्तु उसे कोई सफलता प्राप्त न हुई। इस असफलता का समाचार जब फर्रुख़सियर को मिला तो उसे बहुत खुशी हुई और गुप्त रूप से उसने मरहठा सरदारों को स्वयं अपने सूबेदार के विरुद्ध शस्त्र उठाने के लिये उत्साहित किया। यह संकेत पाकर मरहठों ने स्पष्ट रूप से दक्षिण में धावे मारने शुरू कर दिये। हुसेनअली को मरहठों से सन्धि करनी पड़ी। उसने यह स्वीकार किया कि मरहठे सरदार स्वयं चौथ वसूल

किया करें। उसने उन्हे अपने सूबों मे से सर्देशमुखी वसूल करने का भी अधिकार दिया। उसने उन मार्गो मे मरहठो की स्वतंत्रता स्वीकार की कि जो शिवाजी ने विजय किये थे। इसके बदले में राजा साहू ने भी मुगल-प्रदेश में से वसूल की चौथ में से १० लाख वार्षिक तथा सर्देशमुखी में से भी उपयुक्त भेंट सूबेदार को देनी स्वीकार की। इसके अतिरिक्त राजा साहू ने सूबेदार की सहायता के लिये अपनी सेना मे १५००० सिपाही रखना स्वीकार कर लिया, और दक्षिण मे शान्ति रखने की जिम्मेवारी भी ली। मरहठो और मुगलो मे हुई यह सन्धि बादशाह फर्रुखसियर को बहुत ही अपमानजनक प्रतीत हुई। उसने इसे मानने से इनकार कर दिया और दिल्ली से एक सेना मरहठों का दमन करने के लिए भेजी। इस संघर्ष में सैयद भाइयों ने सन् १७१९ मे फर्रुखसियर को मार डाला। वर्ष के अन्त मे मुहम्मदशाह तख्त पर बैठाया गया। करीम-उद्दीन चिन किलच खां को, जो आसफजा निजाम उल-मुल्क के नाम से प्रसिद्ध है, मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ। हुसेनअली शाह के साथ हुई मरहठो की सन्धि को नये सम्राट् ने फिर से स्वीकार किया। राजा साहू को स्वतंत्र राजा स्वीकार किया गया। दक्षिण के ६ मुगल सूबों से चौथ और सर्देशमुखी वसूल करने का उसे अधिकार मिला, और इसके साथ ही इन सूबो मे उसे २५ सैकड़ा सैनिक अधिकार मिले। इस सन्धि पर हस्ताक्षर होने के कुछ समय पश्चात् ही सन् १७२० मे बाला जी विश्वनाथ का देहान्त हो गया। राजा साहू ने उसके स्थान पर उसके पुत्र बाजीराव को पेशवा नियुक्त किया।

बाजीराव मरहठा-साम्राज्य का सब से महान् पेशवा माना जाता

पेशवा बाजीराव
१७२०–१७४०

है। उसके २० वर्ष के प्रबन्ध-काल में मुग़ल साम्राज्य की केन्द्रीय-शक्ति बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो गई। बाजीराव का समस्त समय पडोसी राज्यों से लड़ते-भिड़ते ही व्यतीत हुआ।

(१) सब से पहले उसने अपना ध्यान पश्चिमी समुद्र-तट पर बसे पुर्तगाल-निवासियों की ओर फेरा। सन् १७२५ से लेकर १७३९ तक इन १५ वर्षों में उसने पुर्तगालवालों की समस्त बस्तियां—सालसिट, चॉल, बसीन, थाना तथा महीम—छीन लीं और गोआ पर भी आक्रमण किया। अब पुर्तगालवालों ने हार कर उससे सन्धि कर ली। पुर्तगालवालों के पास केवल गोआ, दमन और ड्यू के बंदरगाह ही रह गये। (२) पेशवाई संभालते ही बाजीराव ने गुजरात-काठियावाड की ओर भी अपना ध्यान फेरा।

पेशवा बाजी राव

सन् १७२४ में जब करीम-उद्दीन-चिन किलच खां निजाम उल मुल्क दक्षिण में स्वतंत्र हो बैठा, तब सम्राट् मुहम्मदशाह ने उसे मालवा और गुजरात-काठियावाड की सूबेदारी से हटा दिया और अन्य मुगल सरदारों को उन प्रान्तों का सूबेदार बना कर भेज दिया, परन्तु निजाम-उल-मुल्क के अफसरों ने इन नए सूबेदारों को स्वीकार नहीं किया। इस पर उत्पात उठ खड़ा हुआ, और मरहठा सरदारों को इस संघर्ष में किसी न किसी का पक्ष लेने का अवसर मिला। सन् १७२९ में गुजरात-काठियावाड के सूबेदारों ने बाजीराव को चौथ तथा सर्देशमुखी देना स्वीकार किया।

सन् १७३५ मे इस प्रान्त को मरहठों ने पूर्ण रूप से जीत लिया। दामाजी गायकवाड़ ने मुग़लो की राजधानी अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया और बड़ोदा में अपनी राजधानी बसाई। (३) सन् १७३२ मे बाजीराव ने पठानो को बुन्देलखण्ड से निकाल दिया। इस सेवा के बदले मे बुन्देल-नरेश महाराज छत्रसाल ने जालौन, झांसी, सागर तथा भोपाल के समीप टोंक रियासत का सिरोंज का स्थान दे दिए। (४) सन् १७३६ मे बाजीराव ने मालवा को जीत लिया। (५) सन् १७३८ में मालवा और चम्बल के बीच स्थित ग्वालियर का प्रदेश उसके हाथ लगा। मल्हारराव होल्कर उत्तर-मालवा का शासक बनाया गया। इन्दौर राजधानी बनाई गई। ऊधाजी पवांर दक्षिण मालवा का शासक नियुक्त हुआ। धार उनकी राजधानी हुई। कानोजी सिन्धिया ग्वालियर का शासक बना। (६) पूर्व में बाजी-राव को अधिकतर निजाम-उल-मुल्क से लड़ना पड़ा। सन् १७२८ मे निजाम की हार हुई और मरहठो ने उन प्रान्तो से, जो उसके अधीन थे, चौथ और सर्देशमुखी वसूल की। (७) बाजीराव के समय मे ही मरहठे गोंडवाना और उड़ीसा की ओर बढ़ने लगे। सन् १७३९ मे जब बाजीराव ने सुना कि नादिरशाह ने मुगलों की शाही सेना को परास्त कर दिल्ली को लूट लिया है, तब उसने समस्त हिन्दू और मुस्लिम शक्तियो को एकत्रित कर नादिरशाह से युद्ध करने का निश्चय किया। नर्मदा और चम्बल के बीच सेनाएं एकत्रित हो ही रही थीं कि नादिरशाह, मुहम्मदशाह को दिल्ली के सिंहासन पर फिर से बैठाकर, ईरान लौट गया। बाजीराव सन् १७४० में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके बाद उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। वह एक लम्बे डील-डौल का, गोरा और सुन्दर युवक था, परंतु था बहुत घमण्डी। सब लोग उसकी योग्यता का आदर करते थे, परंतु उसे कोई चाहता न था। अपने प्रबन्ध-कुशल

में उसने मरहठों को देश की सब से महान् शक्ति बना दिया। उसने डच और पुर्तगाल वालों की शक्ति का दमन किया और मुगल शक्ति को पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने निज़ाम जैसे योग्य शासक की शक्ति को भी दुर्बल बना दिया।

बालाजी बाजीराव
१७४०—१७६१

बाजीराव ने तो अपना ध्यान दक्षिण (दकन) तथा उत्तर-भारत तक ही सीमित रखा था, परन्तु उसके पुत्र बालाजी बाजीराव ने दक्षिण-भारत में भी अपनी हलचलें शुरू कर दीं। दक्षिण में सब से पहला मरहठा-आक्रमण शिवाजी के समय में हुआ था। सन् १७२६ में बाजीराव के समय में दूसरा आक्रमण भी किया गया। परन्तु जब बालाजी बाजीराव पेशवा बना तो दक्षिण भारत को अपने अधिकार में लाना मरहठों ने अपनी नीति बना ली। सब से पहले कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच के प्रदेश पर विजय प्राप्त की गई। उसके बाद मरहठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। वहां से बहुत सा धन उनके हाथ लगा। सन् १७५६ में शोलापुर, बेलगाम और हुबली के जिले मरहठों के अधिकार में आ गए। सन् १७५९ में मरहठे फिर मैसूर की ओर बढ़े परन्तु उस समय मैसूर राज्य पर हैदर अली का प्रभुत्व था। उसने मरहठों को आगे बढ़ने न दिया। बालाजी बाजीराव के समय में मरहठे निज़ाम से बराबर लड़ते रहे। आसफजाह निज़ाम-उल-मुल्क सन १७४८ में मर चुका था, और उसकी मृत्यु के तत्काल पश्चात् ही उसके [illegible] में गद्दी के लिए युद्ध छिड़ गया था। इस [illegible] मरहठे इस भ्रातृ-युद्ध [illegible] लाभ उठा रहे थे। राजा साहू सन् १७४९ में परलोक [illegible] चुका था। परन्तु शीघ्र ही मरहठे सरदार राजनीतिक उलझनों में [illegible] हो गए, और अब उन्होंने

हैदराबाद के मामलो में भाग लेना शुरू कर दिया। सन् १७५२ मे खानदेश तथा बरार के कुछ जिले मरहठो के अधिकार मे आ गए। सन् १७५९ मे उन्होंने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। इस पर मरहठों और निजाम में युद्ध छिड़ गया। सन् १७६० मे उदगिर के युद्ध में निजाम की पूर्ण पराजय हुई। इस विजय के द्वारा अहमदनगर, बीजा पुर, तथा असीरगढ और शिवनेर के क़िलों पर मरहठो का कब्जा हो गया। बालाजी बाजीराव के समय मे मरहठो ने बगाल पर भी आक्रमण किया। सन् १७४५ में मरहठो ने देवगढ और चादा के गोंड राज्यों को जीता। सन १७४८ में गढमण्डल पर कब्जा किया। सन १७५१ में उडीसा पर विजय लाभ की। इस पर दक्षिण, पूरब, दकन तथा मध्य-भारत मे अपनी शक्ति को सब मे प्रबल बनाकर मरहठो ने फिर उत्तर-भारत की ओर अपना ध्यान किया। इस समय रुहेले जोर पकड रहे थे। सन् १७५१ मे अवध के नवाब वजीर सफदर जग ने रुहेलो के विरुद्ध मरहठों की सहायता ली। होलकर और सिन्धिया उनके विरुद्ध भेजे गए। रुहेले परास्त हुए और वे कुमाऊ की पहाड़ियों की ओर भाग गए। मरहठे अभी रुहेलखण्ड मे ही थे कि सन् १७५२ मे अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया। सफदरजग और उसके सहायक मरहठो के दिल्ली पहुचने से पहले ही मुगल सम्राट् ने लाहौर और मुलतान अब्दाली को सौंप दिए और वह कधार वापिस चला गया। इस पर मरहठे सरदार--सिन्धिया और होल्कर—दकन लौट आए। सन् १७५४ मे दिल्ली के मुगल अधिकारियो ने भरतपुर के जाटो के विरुद्ध मरहठो की फिर सहायता ली। परन्तु इसी समय दिल्ली-सम्राट् अहमदशाह को उसके वजीर शहाब-उद्दीन ने मार डाला और जहादरशाह के पुत्र आलमगीर को गद्दी पर बैठाया। आलमगीर रुहेला सरदार नजीब-

उद्दौला के हाथो की कठपुतली हो गया। इस पर शहाब-उद्दीन ने सन् १७५७ में मरहठों से फिर सहायता मागी। बालाजी बाजीराव ने अपने भाई रघुनाथराव को, जो इस समय मालवा में था, दिल्ली भेजा दिल्ली पर मरहठों का अधिकार हो गया। इसी समय जालन्धर के सरदार अदीनबेग ने अब्दालियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसने मरहठो की सहायता के लिये प्रार्थना की। रघुनाथराव ने तत्काल पञ्जाब की ओर कूच कर दिया। सरहिन्द के पास उसने एक अब्दाली-सूबेदार को हराया और सन् १७५८ मे लाहौर में प्रवेश किया। पंजाब के शासक शाहजादा तैमूर को, जो अहमदशाह अब्दाली का लड़का था, पंजाब से निकाल दिया गया और सिन्धु नदी तक समस्त पंजाब पर मरहठों का अधिकार हो गया। परन्तु इन समस्त युद्धों में मरहठों का बहुत-सा रुपया खर्च हुआ। अदीनबेग को मरहठों की ओर से पंजाब का सूबेदार बना कर, जनोजी सिन्धिया को दिल्ली में छोड़ कर, दत्ताजी सिन्धिया को गवालियर का और मल्हारराव होल्कर को इन्दौर का शासक नियुक्त कर रघुनाथराव दक्खन वापिस चला गया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई १७६१

सन् १७५९ मे शहाब-उद्दीन ने पुन रुहेलों पर आक्रमण किया और मरहठों को सहायता के लिये बुलाया। परंतु इस बार रुहेले और अवध का नवाब वजीर मिल गये और उन्होंने अहमदशाह अब्दाली को भी सहायता के लिये बुलाया। आलमगीर भी शहाब-उद्दीन से नाराज था। उसने भी गुप्त-रूप से अब्दाली बादशाह को आने के लिये लिखा। उधर उसके पुत्र तैमूर को मरहठों ने पंजाब से निकाल ही दिया था। इन सब बातों से अब्दाली ने भारत पर पुन आक्रमण करने की ठान ली। जब शहाब-उद्दीन को

यह मालूम हुआ कि आलमगीर और अब्दाली में गुप्त पत्र-व्यवहार हुआ है, तो उसने आलमगीर को मरवा डाला और भारत के भाग्य का निर्णय करने के लिये मरहठों और अब्दाली को छोड़ कर स्वयं एक तरफ हो गया। परन्तु अब की बार मरहठों की सेना का संचालन अनुभव-हीन व्यक्तियों के हाथो मे था। पहले के युद्धों मे अधिक खर्च कर देने के कारण इस बार रघुनाथराव को सेना की बागडोर नही सौंपी गई। मलहारराव होलकर और भरतपुर के जाट सरदार सूरजमल जैसे अनुभवी सैनिकों के परामर्श को घृणापूर्वक ठुकरा दिया गया। इधर नवयुवक सेनापति सदाशिवराव के असहनीय व्यवहारों से राजपूत भी बहुत नाराज थे। परिणाम यह हुआ कि इनमें से किसी ने भी मरहठों का साथ नहीं दिया। सेना भी बिल्कुल अयोग्य और भारी थी। इसमें स्त्रिया, बच्चे, दुकानदार आदि अनावश्यक रूप से भरे पड़े थे। इतनी बडी सेना और उसके पिछलगुओं के लिए बहुत सी खाद्य-सामग्री की आवश्यकता थी। परन्तु इसका कोई ठीक प्रबन्ध न था। ऐसी परिस्थितियों मे मरहठों के लिए यह आवश्यक था कि वे दक्षिण से अपना सम्बन्ध बनाए रखते, परन्तु इसके बदले सदाशिवराव उत्तर मे आगे करनाल तक बढता चला गया, इधर अब्दाली ने सहारनपुर के समीप जमुना को पार कर रुहेलो और अवध के नवाब वजीर की सेनाओ से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। जब सदाशिवराव दिल्ली से निकल कर करनाल की ओर बढ गया, तो अब्दाली ने अपने सहायकों के साथ नीचे की ओर जमुना नदी को फिर पार किया और चुपके से दिल्ली पहुंच गया। अब दक्षिण से मरहठों का सम्बन्ध काट दिया गया। इनसे सदाशिवराव को जाट, राजपूतों और मरहठों की कोई सहायता नहीं पहुंच सकती थी। सेना के लिए रसद का आना बन्द हो गया। ऐसी

बन गया। साम्राज्य में प्रत्येक सरकार को समान-अधिकार थे। पेशवा अब एकच्छत्र साम्राज्य का प्रधान मन्त्री होने के बदले, इस राज्य-समूह (Confederation) का प्रधान बना। अब वह साम्राज्य के समस्त सरदारों को आज्ञाएं जारी नहीं कर सकता था, बल्कि उसे स्वयं बहुमत के पीछे चलना पड़ता था। यह मरहठा राज्य-समूह की प्रणाली भी मरहठा-शक्ति को लगभग आधी शताब्दी तक बनाए रख सकी। सम्भव था कि यह मरहठा-संघ-शक्ति मरहठों की शक्ति को फिर से भारत भर में स्थापित करने में सफल होती, परन्तु केन्द्रीय-शक्ति के दुर्बल होने और एक ऐसी शक्ति से सामना होने के कारण जो कूटनीतिज्ञता में निपुण थी, इसे सफलता न मिली। यह संघ-शक्ति १७६१ से १८०५ तक स्थित रही और इसके बाद समस्त शक्ति ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में चली गई।

पेशवाओं की वंशावली

भारतवर्ष
मरहठों के समय में

वंड
नेपाल
वध
आसाम
बिहार
बंगाल
बर्मा
उड़ीसा
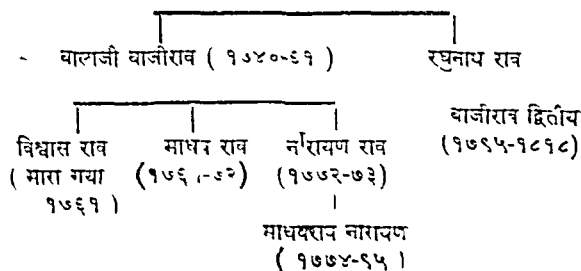
तीसरा अध्याय

मरहठा-राज्य-संघ १७६१-१८०५

मरहठे पानीपत की लड़ाई के बाद

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि अधिकांश मरहठा-सरदारों का यह विचार था कि पानीपत में उनकी पराजय साम्राज्य में ब्राह्मण-प्रभुत्व के कारण ही हुई है। अत मरहठा-सरदारों मे पेशवा के विरुद्ध विद्रोही-भाव उठ खड़े हुए। ऐसी स्थिति में पड़ोसी राज्यों को अवसर मिला कि वे मरहठों द्वारा विजित अपने पहले प्रदेशों को फिर से हस्तगत करें। पूर्व मे निज़ाम-अली ने उदगिर की पराजय का बदला चुकाने और सन् १७६० मे खोये गए अपने प्रदेशों को वापस लेने का निश्चय किया। दक्षिण मे हैदरअली ने कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के खोये हुए मैसूर के प्रदेश को वापस लेने पर कमर कसी। ऐसे ही समय मे बालाजी बाजीराव के दूसरे पुत्र माधवराव ने, जो अभी १६ वर्ष का बालक ही था, पेशवा की गद्दी ग्रहण की।

पेशवा माधवराव १७६१-१७७२

माधवराव के पेशवा होने पर उसका चचा रघुनाथराव राज-कार्य मे सहायता देने के लिये उसका संरक्षक बना। माधवराव ने गद्दी पर बैठते ही अपने चचा के नियंत्रण से छुटकारा पाना चाहा। इस पर रघुनाथराव विद्रोह कर निज़ाम-उल-मुल्क से जा मिला और उदगिर के युद्ध मे मरहठों ने ६२ लाख का जो प्रदेश जीत लिया था, उसने से ५२ लाख का प्रदेश हैदराबाद को

सन् १७६३ में राक्षस-भवन के युद्ध मे निज़ाम पराजित हुआ और नए पेशवा ने अपना ध्यान हैदरअली की ओर किया। क्रमश. सन् १७६५, १७६६ और १७६९ में हैदरअली से तीन बडी बड़ी लड़ाइयां हुई। इन युद्धों में हैदरअली की शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि अन्त में सन् १७७२ में उसे अपना आधा प्रदेश मरहठो को सौंप देना पड़ा। यही नहीं, बल्कि उसे ३६ लाख रुपया युद्ध के हरजाने मे देना पड़ा और यह भी स्वीकार करना पड़ा कि वह १४ लाख वार्षिक कर माधवराव को देता रहेगा। निज़ामअली से निपट कर माधवराव ने जानोजी भोंसला से भी निपटना चाहा। १७६५ से लेकर १७६९ तक उसके प्रदेश पर बराबर आक्रमण किए और वे सब प्रदेश उससे छीन लिए गए जो उसे निज़ाम के विरुद्ध लड़ने के बदले दिये गये थे। जानोजी भोंसला अब पेशवा के अधीन केवल एक जागीरदार रह गया और बाहरी-शक्तियों से उसका समस्त स्वतन्त्र-संसर्ग जाता रहा। इस प्रकार दक्षिण में अपनी स्थिति दृढ़ कर माधवराव ने उत्तर-भारत की ओर अपना ध्यान फेरा। मल्हारराव होल्कर की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा महारानी अहल्याबाई इन्दौर मे राज करने लगी। उसने तुकाजी को गोद ले लिया। पेशवा ने माधवराव सिन्धिया तथा तुकाजी होल्कर को, जो मालवा मे स्थित थे, दिल्ली की ओर बढ़ने का आदेश दिया। इन दोनो सरदारों ने चम्बल नदी को पार कर राजपूतो पर विजय प्राप्त की और उन पर वार्षिक कर लगा दिया। इसके बाद इन दोनों ने शाहआलम द्वितीय को, जो इलाहाबाद मे निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहा था, दिल्ली वापस लाकर, गद्दी पर बैठाने और उसकी आड़ में समस्त देश पर मरहठा-साम्राज्य की नींव डालने का निश्चय किया। माधवराव सिन्धिया शाहआलम से मिला। शाहआलम

ने हर्ष से मरहठों की सहायता का स्वागत किया और इस सेवा के बदले में इलाहाबाद और कारा के प्रदेश देना स्वीकार किये। सन् १७७२ में शाहआलम को दिल्ली की गद्दी पर फिर से बिठा दिया गया। उसकी अनुमति से मरहठों ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई की और रुहेलों के प्रदेश पर अधिकार कर उसे मरहठा-शासन में मिला लिया। ठीक इसी समय दक्षिण से समाचार मिला कि माधवराव मर गया। यह समाचार पाते ही मरहठा-सरदारों ने रुहेलों से भारी रक़म लेकर रुहेलखण्ड उन्हें लौटा दिया और स्वयं दक्षिण वापस चले गए। माधवराव की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा की गद्दी पर बैठा। परन्तु एक वर्ष के ही अन्दर रघुनाथराव के कहने से उसकी हत्या कर डाली गई। पेशवा की गद्दी के लिए पारस्परिक युद्ध छिड़ गया।

पेशवा माधवराव नारायण १७७४–१७९५

जब नारायणराव की हत्या की गई उस समय उसकी स्त्री गर्भवती थी। कुछ ही महीनों के पश्चात् उसने एक लड़के को जन्म दिया। माधवराव नारायण उसका नाम रक्खा गया। परन्तु इस लड़के के जन्म के पूर्व ही रघुनाथराव ने अपने को पेशवा घोषित कर दिया था। वह पेशवा बालाजी बाजीराव का छोटा भाई था, और, जैसा कि हम पहले बता चुके है, अपने भाई के समय मे उसने उत्तर-भारत पर विजय प्राप्त की थी। भाई की मृत्यु पर वह अपने भतीजे माधवराव का संरक्षक बना और अब उसने अपने आपको पेशवा घोषित कर दिया। परन्तु पूना के सब मरहठा-सरदार उसके विरुद्ध थे। रघुनाथराव उत्तर की ओर बढा और होल्कर तथा सिन्धिया से, जो इस समय उत्तर से लौट रहे थे, सहायता की प्रार्थना की। यही नहीं बल्कि उसने बम्बई के

अंग्रेज़ों से भी सहायता मांगी। रघुनाथराव और बम्बई के अंग्रेज़ अधिकारियों के बीच सन् १७७५ में सूरत में एक सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेज़ों को बम्बई के पास बसीन और सालसट के द्वीप मिलने का निश्चय हो गया। मरहठों ने इन द्वीपों को सन् १७३७ में पुर्तगाल वालों से भारी हानि उठा कर जीता था। जब होल्कर और सिन्धिया को मालूम हुआ कि अंग्रेज़-अधिकारियों से सन्धि करते समय रघुनाथराव ने मरहठों के उन त्यागों का कोई विचार नहीं किया है, तो उन्होंने रघुनाथराव को सहायता देने से इनकार कर दिया। उन्होंने पूना के उन मरहठा सरदारों का साथ देना स्वीकार किया जो कि माधवराव के पुत्र माधवराव नारायण के पक्ष की सहायता कर रहे थे। बंगाल कौंसल भी इस सन्धि से सहमत न थी। पुरन्दर में नाना फड़नवीस और अंग्रेज़ों के बीच एक सन्धि हुई जिससे अंग्रेज़ों ने सालसट पर अधिकार मिलने की शर्त पर रघुनाथराव का साथ छोड़ दिया। परन्तु कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सूरत की सन्धि ही स्वीकार की। अंग्रेज़ों ने रघुनाथराव का फिर पक्ष लिया। परन्तु बम्बई से रघुनाथराव की सहायता के लिए आने वाली अंग्रेज़ी सेना परास्त हुई। अंग्रेज़ी सेना के सेनापति को बादगाव के समीप अपनी बंदूकें तालाब में फेंक देनी पड़ीं और सन् १७७३ से लेकर अंग्रेज़ी सेनाओं ने जिन जिन स्थानों को जीता था सब वापस देने पड़े।

सन् १७८० में वारेन होस्टिंग्ज़ ने इस अपमान को दूर करने का निश्चय किया। उसने एक अंग्रेज़ी सेना बंगाल से बम्बई भेजी।

अंग्रेज़ों और मरहठों की पहली लड़ाई

पश्चिम में बम्बई के अंग्रेज़-अधिकारियों ने गुजरात, काठियावाड़ पर चढ़ाई शुरू कर दी। मध्य-भारत में गोहद के राजा

था। वह भी एक महान् कूटनीतिज्ञ था। उसने मैसूर के हैदरअली को अपनी ओर मिला लिया। जब गवालियर पर अंग्रेज़ों का अधिकार होगया तो सिन्धिया को इससे अपनी चिन्ता हो गई। इतना होने पर भी अंग्रेज़ों को अधिक सफलता नहीं मिली। हैदरअली ने उन्हें दक्षिण मे फंसाए रखा और इधर उत्तर मे स्वयं मरहठो ने उनसे लोहा लिया। सन् १७८३ मे दोनों के मध्य सालबाई की सन्धि हो गई। अंग्रेज़-अधिकारी इस बात पर सहमत हुए कि वे पेशवाई प्राप्त करने के लिए रघुनाथराव की सहायता नहीं करेंगे। एल्फेण्टा और सालसट के द्वीप अंग्रेजों के पास ही रहने दिए गए। मरहठो ने यह बात भी स्वीकार की कि वे मैसूर के सुलतान से वह प्रदेश दिलवा देंगे जो उसने अंग्रेज़ों अथवा नवाब अरकाट से जीते थे। इस प्रकार अंग्रेजों और मरहठों की लड़ाई समाप्त हुई। मरहठो का उद्देश सफल हुआ। रघुनाथराव पेशवा न हो सका और अंग्रेजो ने उसकी सहायता से हाथ खींच लिया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी इस लड़ाई से यह लाभ हुआ कि एलफेण्टा और सालसट के द्वीप उसे मिल गए जो बम्बई के बिलकुल पास ही थे। इससे उन्हे बम्बई मे शत्रुओ का सब भय जाता रहा।

मरहठा-मैसूर-लड़ाई

अभी अंग्रेज़ों और मरहठो की लड़ाई हो ही रही थी कि सन् १७८२ मे हैदरअली मर गया। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र फतहअली खां, जो इतिहास में टीपू सुल्तान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, मैसूर की गद्दी पर बैठा। सालबाई की सन्धि होने के कुछ ही समय पश्चात् टीपू सुलतान ने मरहठा-प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच के देश पर उसने आक्रमण करने शुरू कर दिए। अन्त में नाना फड़नवीस ने हैदराबाद के निज़ामअली के

साथ मिल कर मैसूर पर चढ़ाई की। सन् १७८७ में टीपू सुलतान को विवश सन्धि करनी पड़ी। उसने मरहठों और निज़ामअली को कुछ प्रदेश दिए और साथ ही ४५ लाख का हरजाना मरहठों को दिया। इसके बाद उसने अंग्रेज़ी प्रदेशों को हड़प कर दक्षिण-भारत में अपने राज्य का विस्तार करने के विचार से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर अपना ध्यान किया। टर्की के सुल्तान और फ्रांस के बादशाह को उसने सहायता के लिए लिखा। टर्की के सुल्तान ने तो उसे सहायता देने से इनकार कर दिया परन्तु फ्रांसीसियों ने उसे सहायता की आशा दिलाई। सुलतान टीपू ने अब मलाबार-तट के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार किया और इसी उद्देश से उसने सन् १७८९ में ट्रावन्कोर के ज़िलों पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। इससे पहिले ही अंग्रेज़ों और ट्रावन्कोर दरबार में सन्धि हो चुकी थी जिससे अंग्रेज़ इस बात पर बाध्य थे कि यदि ट्रावन्कोर पर कोई आक्रमण करे तो वे दरबार को सहायता दें। परन्तु मदरास के अंग्रेज अधिकारी ट्रावन्कोर की पूरी पूरी सहायता नहीं कर सकते थे। इसलिए सन् १७९० में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी, हैदराबाद और मरहठा इन तीनों मे एक सन्धि हुई जिसमें यह बात निश्चय हुई कि यदि वे विजयी हुए तो जीते हुए प्रदेश को बराबर बराबर बाट लेंगे। उधर ट्रावन्कोर की सेनाओं ने भी टीपू सुलतान का डट कर सामना किया और वह उस राज्य पर अधिकार न जमा सका। टीपू सुलतान अभी ट्रावन्कोर में उलझ ही रहा था कि मरहठों, निजामअली तथा अंग्रेज़ों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया। लार्ड कार्नवालिस स्वयं अंग्रेज़ी सेना का सेनापति बना, परन्तु शत्रु ने उसकी सेनाओं को चारों ओर से घेर लिया और सिपाहियों

में हैजा भी फूट निकला। अन्त में उसे अपनी तोपे कावेरी नदी में फेंक कर बंगलौर की ओर वापस लौटना पड़ा। ठीक इसी समय मरहठा सेनाएं लार्ड कार्नवालिस की सहायता को पहुंच गई। अब दोनों ने श्रृंगापटम् पर आक्रमण किया। टीपू सुलतान को विवश सन्धि करनी पड़ी। सन् १७९२ मे इस शर्त पर सन्धि की गई कि टीपू सुलतान अपना आधा राज्य विजयी शक्तियों को सौप दे। इस युद्ध मे कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का सारा प्रदेश मरहठो के हाथ आया।

उत्तर-भारत में मरहठा-राज्य

पहले बताया जा चुका है कि सन् १७७२ में जब माधवराव पेशवा की मृत्यु हुई उस समय मरहठा सेनाएं उत्तर-भारत से दक्षिण लौट आई थी। सन् १७८२ मे मरहठों को फिर दिल्ली बुलाया गया। माधवराव सिन्धिया ने तत्काल चम्बल नदी को पार कर आगरा पर अधिकार कर लिया। अब शाहआलम ने माधवराव सिन्धिया को अमीर-उल-उमरा का पद देना चाहा। माधवराव ने यह पद स्वयं लेना स्वीकार न किया परन्तु पेशवा की ओर से वकील-ए-मुतलक का डिप्टी होना स्वीकार कर लिया। उसकी यह बात मान ली गई और तब शाहआलम ने सब शाही सेनाओं की बागडोर सिन्धिया के हाथ सौंप दी। सिन्धिया ने बादशाह को उसके अपने खर्चे के लिए ६५ हज़ार रुपये मासिक देना स्वीकार किया। इस समय दिल्ली की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। खज़ाने मे रुपया न था। साम्राज्य के सब सूबे स्वतन्त्र हो चुके थे। न तो प्रान्तों से कर आता था और न ही केन्द्रीय प्रदेशो से राजधानी को कोई आय थी। माधवराव सिन्धिया के पास अपने सैनिकों को वेतन देने को रुपया न था। वह बादशाह को देने के लिए ६५ हज़ार रुपया महीना कहा से लाता? ऐसी परिस्थितियों

मे उसके पास सिवाय इसके और कोई उपाय न था कि वह केन्द्रीय जागीरों को ज़ब्त करले और कर देने वाले राजाओं और नवाबों से कर मागे। परन्तु इस नीति के व्यवहार मे लाते ही राजपूतों ने विद्रोह कर दिया। सन् १७८७ मे अधिकाश राजपूत राजाओं ने मिलकर माधवराव सिन्धिया को परास्त किया और उसे गवालियर मे आश्रय लेना पड़ा। परन्तु दकन से सहायता पाकर वह पुन दिल्ली की ओर बढा और रुहेलों की जागीर जब्त करली। इस प्रकार रुहेलो से निपट कर उसने राजपूतों की ओर मुँह किया। उसने अपनी सेना को शिक्षा देने के लिए डी बोइन (De Boine) नामक एक फ्रासीसी को नौकर रखा। इस प्रकार सेना को शिक्षित बनाकर उसने राजपूतों पर चढ़ाई की। पाटन के युद्ध मे राजपूतों की हार हुई। सन् १७९० मे डी बोइन ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। अगले १३ वर्षों तक माधवराव सिन्धिया उत्तर-भारत पर शासन करता रहा और शाहआलम की स्थिति एक पेशन-भोगी से अधिक न थी। शाहआलम ने फिर पेशवा को अपना वकील ए-मुतलक नियुक्त किया। सन् १७९२ मे वकील-ए-मुतलक़ की नियुक्ति का शाही फर्मान पूना के एक विशेष दरबार मे, जो इसीलिए किया गया था, बादशाह की ओर से पेशवा को पेश किया गया। दूसरे दिन एक और दरबार किया गया जिसमे पेशवा नारायण ने सिन्धिया को अपना डिप्टी या लफटण्ट नियुक्त किया। परन्तु इसके शीघ्र ही बाद सन् १७९४ मे माधवराव बुखार के कारण मर गया। भारतवर्ष के इतिहास में उसका व्यक्तित्व बहुत बडा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दौलतराव उसके पद पर बैठा। परन्तु उसमे उत्तर-भारत में मरहठा-शासन को स्थित रखने की योग्यता न थी। माधवराव सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् १० वर्ष के भीतर

उत्तर-भारत से मरहठों का शासन लुप्त होगया और अन्य मरहठा-राज्यों की स्वतन्त्रता भी जाती रही।

मरहठों और टीपू सुलतान में युद्ध हो ही रहा था कि मरहठों और निजामअली में झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

मरहठों की हैदराबाद से लड़ाई

कुछ वर्षों से मरहठों को हैदराबाद से चौथ और सर्देशमुखी कर नहीं मिले थे। क्योंकि करों की रकम इकट्ठी होगई थी, इसलिए पूना दरबार के प्रधान मन्त्री नाना फड़नवीस ने इनके चुका देने पर जोर दिया। निज़ामअली समय प्राप्त करने के विचार से इसे टालता रहा और इधर अपनी सेना को शिक्षा देने के लिए उसने रेमण्ड (Raymond) नामक एक फ्रांसीसी को नियुक्त कर लिया। जब उसे निश्चय हो गया कि मेरी सेना पर्याप्त सुशिक्षित होगई है तो निज़ामअली ने पूना दरबार को लिख भेजा कि हमारे हिसाब से तो मरहठों की पाई पाई चुका दी गई है। यही नहीं बल्कि कुछ रुपया अधिक पहुंच चुका है जिसे मरहठों को वापस देना चाहिए। नाना फड़नवीस ने उत्तर दिया कि तुम्हारा हिसाब गलत है। अन्त में सन् १७९४ में निज़ामअली ने मरहठों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रेमण्ड द्वारा शिक्षा पाई हुई सेना पर उसका पूरा भरोसा था और उसे आशा थी कि यदि मरहठे एक बार हार गए तो सदा के लिए उनसे छुटकारा मिल जाएगा। परन्तु नाना फड़नवीस भी ऐसा वैसा न था। वह शक्तिशाली होने के साथ साथ मरहठा-शक्तियों में एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ माना जाता था। बड़ौदा का गोविन्दराव गायकवाड़, नागपुर का राघोजी सिन्धिया, ग्वालियर का दौलतराव सिन्धिया, इन्दौर का तुकाजी होल्कर तथा अन्य मरहठा १९५। सब के सब मरहठा-राज्य-संघ की सहायता करने को आए। सन्

१७९५ में खुरदा नामक स्थान पर घमसान युद्ध हुआ और निज़ाम-अली की हार हुई। पेशवा को चौथ और सर्देशमुखी के पिछले शेष के हिसाब में ३ करोड़ २९ लाख रुपए दिए गए और ३ लाख वार्षिक आय का प्रदेश राघोजी भोंसला को मिला। इस युद्ध के बाद निज़ाम राज्य इतना हीन और क्षीण हो गया कि उसे फिर कभी किसी अन्य राजा से युद्ध छेड़ने का उत्साह नहीं हुआ। खुरदा की लड़ाई के कुछ ही दिन बाद माधवराव नारायण पेशवा, बीमारी की दशा में, छत पर से गिर पड़ा और मर गया। उसके बाद रघुनाथराव का लड़का बाजीराव की गद्दी पर बैठा।

माधवराव नारायण ने अपनी मृत्यु-शय्या पर बाजीराव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

पेशवा बाजीराव द्वितीय १७९५—१८१८

बाजीराव के पिता रघुनाथराव और नाना फड़नवीस एक दूसरे के पुराने शत्रु थे। इस लिए यद्यपि फड़नवीस बाजीराव पर विश्वास नहीं कर सकता था किन्तु फिर भी उसने उसे पेशवा स्वीकार कर लिया। पदारूढ होते ही बाजीराव द्वितीय को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन्दौर का शासक तुकाजी होल्कर की सन् १७९६ में मृत्यु हो गई थी और उसके चार पुत्रों में इन्दौर की गद्दी के लिये झगड़ा हो गया। दौलतराव सिन्धिया ने इस लड़ाई में हस्तक्षेप किया। वह एक का पक्ष लेकर इन्दौर का वास्तव में स्वामी ही बन बैठा। सिन्धिया की शक्ति मरहठों में प्रबल हो गई। बाजीराव द्वितीय ने सोचा कि नाना फड़नवीस के पंजे से छुटकारा पाने के लिये यह अच्छा अवसर है, क्योंकि वह उसके पिता का जन्म-काल से शत्रु था। उसने सिन्धिया को वचन दिया कि यदि तुम मुझे नाना फड़नवीस से छुटकारा

दिला दोगे तो २ करोड़ रुपया दूँगा। काम भी सुगमता से निपटा लिया गया। दौलतराम सिन्धिया ने किसी बहाने से नाना फड़नवीस को अपने यहां बुला लिया और वहा उसे कैद कर बन्दी के रूप में अहमदनगर के किले में भेज दिया। अब उसने बाजीराव द्वितीय से २ करोड़ रुपये मागे जिसका बाजीराव की ओर से साफ़ जवाब दे दिया गया। इस पर दौलतराव सिन्धिया ने पूना नगर पर आक्रमण कर दिया और दिल भर कर उसे लूटा। बाजीराव द्वितीय ने निजामअली से सहायता मागी और दौलतराव सिन्धिया से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस समय तक सिन्धिया ने नाना फड़नवीस को भी स्वतन्त्र कर दिया था और सन् १७९८ में वह फिर पेशवा का प्रधान मंत्री बन गया। परन्तु नाना फड़नवीस का स्वास्थ्य अब जवाब दे चुका था। सन् १८०९ के प्रारम्भ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु होते ही पूना के मरहठा-दरबार की राजनीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता का लोप होगया। शीघ्र ही मरहठा शक्ति का समस्त ढांचा टुकड़े टुकड़े हो गया। गवालियर में गृह-युद्ध उठ खड़ा हुआ। इन्दौर भी सिन्धिया के हाथ से जाता रहा। दौलतराव सिन्धिया को पूना छोड़ कर उत्तर की ओर भागना पड़ा। सन् १८०२ मे सिन्धिया के पूना से जाने के उपरान्त बाजीराव द्वितीय लोगों पर स्वतन्त्रतापूर्वक अत्याचार करने लगा। उसने प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से बदला लेना आरम्भ किया जिसने कि उसके पिता का विरोध किया था। उसने जसवन्तराव होल्कर के एक भाई को हाथी के पैर से बंधवा कर पूना की गलियों मे घसिटवा कर मरवा डाला। जब जसवन्तराव को इस बात की सूचना मिली तो उसने सिन्धिया के साथ युद्ध छोड़ कर बाजीराव पर चढाई कर दी। पूना के बाहर भीषण युद्ध हुआ। बाजीराव हारा, परन्तु वह भाग निकला और

१७९५ मे खुरदा नामक स्थान पर घमसान युद्ध हुआ और निज़ाम-अली की हार हुई। पेशवा को चौथ और सर्देशमुखी के पिछले शेष के हिसाब में ३ करोड २९ लाख रुपए दिए गए और ३ लाख वार्षिक आय का प्रदेश राघोजी भोंसला को मिला। इस युद्ध के बाद निजाम राज्य इतना हीन और क्षीण हो गया कि उसे फिर कभी किसी अन्य राजा से युद्ध छेडने का उत्साह नहीं हुआ। खुरदा की लडाई के कुछ ही दिन बाद माधवराव नारायण पेशवा, बीमारी की दशा में, छत पर से गिर पडा और मर गया। उसके बाद रघुनाथराव का लडका बाजीराव की गद्दी पर बैठा।

माधवराव नारायण ने अपनी मृत्यु-शय्या पर बाजीराव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

पेशवा बाजीराव द्वितीय १७९५—१८१८

बाजीराव के पिता रघुनाथराव और नाना फडनवीस एक दूसरे के पुराने शत्रु थे। इस लिए यद्यपि फडनवीस बाजीराव पर विश्वास नहीं कर सकता था किन्तु फिर भी उसने उसे पेशवा स्वीकार कर लिया। पदारूढ होते ही बाजीराव द्वितीय को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पडा। इन्दौर का शासक तुकाजी होलकर की सन् १७९६ में मृत्यु हो गई थी और उसके चार पुत्रों में इन्दौर की गद्दी के लिये झगडा हो गया। दौलतराव सिन्धिया ने इस लडाई मे हस्ताक्षेप किया। वह एक का पक्ष लेकर इन्दौर का वास्तव मे स्वामी ही बन बैठा। सिन्धिया की शक्ति मरहठों में प्रबल हो गई। बाजीराव द्वितीय ने सोचा कि नाना फडनवीस के पंजे से छुटकारा पाने के लिये यह अच्छा अवसर है क्योंकि वह उसके पिता का जन्म-काल से शत्रु था। उसने सिन्धिया को वचन दिया कि यदि तुम मुझे नाना फड़नवीस से छुटकारा

दिला दोगे तो २ करोड़ रुपया दूँगा। काम भी सुगमता से निपटा लिया गया। दौलतराम सिन्धिया ने किसी वहाने से नाना फड़नवीस को अपने यहा बुला लिया और वहा उसे कैद कर बन्दी के रूप में अहमदनगर के किले में भेज दिया। अब उसने बाजीराव द्वितीय से २ करोड़ रुपये मागे जिसका बाजीराव की ओर से साफ़ जवाब दे दिया गया। इस पर दौलतराव सिन्धिया ने पूना नगर पर आक्रमण कर दिया और दिल भर कर उसे लूटा। बाजीराव द्वितीय ने निजामअली से सहायता मागी और दौलतराव सिन्धिया से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस समय तक सिन्धिया ने नाना फड़नवीस को भी स्वतन्त्र कर दिया था और सन् १७९८ में वह फिर पेशवा का प्रधान मंत्री वन गया। परन्तु नाना फड़नवीस का स्वास्थ्य अव जवाव दे चुका था। सन् १८०९ के प्रारम्भ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु होते ही पूना के मरहठा-दरबार की राजनीतिज्ञता और बुद्धिमत्ता का लोप होगया। शीघ्र ही मरहठा-शक्ति का समस्त ढांचा टुकड़े टुकड़े हो गया। गवालियर में गृह-युद्ध उठ खड़ा हुआ। इन्दौर भी सिन्धिया के हाथ से जाता रहा। दौलतराव सिन्धिया को पूना छोड़ कर उत्तर की ओर भागना पड़ा। सन् १८०२ मे सिन्धिया के पूना से जाने के उपरान्त बाजीराव द्वितीय लोगों पर स्वतन्त्रतापूर्वक अत्याचार करने लगा। उसने प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से बदला लेना आरम्भ किया जिसने कि उसके पिता का विरोध किया था। उसने जसवन्तराव होल्कर के एक भाई को हाथी के पैर से बधवा कर पूना की गलियों मे घसिटवा कर मरवा डाला। जब जसवन्तराव को इस बात की सूचना मिली तो उसने सिन्धिया के साथ युद्ध छोड़ कर बाजीराव पर चढ़ाई कर दी। पूना के बाहर भीषण युद्ध हुआ। बाजीराव हारा, परन्तु वह भाग निकला और

बसीन जाकर अंग्रेज़ अधिकारियों का आश्रय लिया।

अंग्रेज और मरहठों की दूसरी लड़ाई के कारण

अंग्रेज़ अधिकारियों ने इस शर्त पर पेशवा की सहायता करना स्वीकार किया कि वे उन्हें कर दें। ३१ दिसम्बर सन् १८०२ मे बसीन में एक सन्धि की गई जिससे पेशवा भारत की अंग्रेजी सरकार का सहायक-मित्र हो गया। सन्धि के अनुसार ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सब शत्रुओं से पेशवा की रक्षा करना स्वीकार किया। पेशवा ने अंग्रेज सरकार को पूना में ६००० सेना रखने की स्वीकृति दी ताकि समय पर उसके काम आए और इस सेना का खर्च चलाने के लिए उसने अंग्रेज अधिकारियों को २६ लाख रुपया वार्षिक आय की जायदाद सौंप दी। उसने यह बात भी स्वीकार की कि बिना अंग्रेज अधिकारियों की अनुमति के वह किसी को भी अपनी नौकरी मे नहीं रखेगा और दूसरी शक्तियों के साथ झगड़ा पैदा होने पर वह अंग्रेज सरकार को पंच स्वीकार करेगा। उसने भविष्य में हैदराबाद से चौथ और सरदेशमुखी लेने का अधिकार छोड़ दिया। पेशवा ने यह भी स्वीकार किया कि भविष्य में वह भारत की किसी भी अन्य शक्ति से सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा बल्कि उसकी वैदेशिक-नीति पर भारत की अंग्रेज-सरकार का नियन्त्रण रहेगा। यह स्पष्ट है कि इस सन्धि से मरहठा-राज्य-संघ भंग हो गया। इसलिए संघ के अन्य सरदारों ने सन्धि को स्वीकार नहीं किया। जब सिंधिया ने सुना कि पेशवा ने अंग्रेजों के साथ सहायक-सन्धि स्थापित कर ली है और अंग्रेजी सेनाओं ने पूना पर अधिकार कर लिया है तो उसे इस सूचना पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सिंधिया अपने को मरहठा-राज्य-संघ का प्रधान मानता था और

उसका विश्वास था कि प्रधान को यह कोई अधिकार नही है कि वह सघ के अन्य प्रमुख नेताओ की स्वीकृति बिना किसी अन्य शक्ति का आश्रय ग्रहण कर ले। दौलतराव सिन्धिया और राघोजी भोंसला दोनों बाजीराव के विरुद्ध हो गए और उन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जसवन्तराव होल्कर पेशवा और सिन्धिया दोनों के विरुद्ध था। इसलिए वह किसी ओर भी नही मिला। गायकवाड़ को पहले ही सन् १८०३ मे अंग्रेजों ने मिला लिया था। अत पेशवा के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का परिणाम यह हुआ कि सन् १८०३ मे मरहठों और अंग्रेजो मे युद्ध ठन गया।

अंग्रेज और मरहठो की दूसरी लड़ाई

जिस समय अंग्रेज और मरहठो की दूसरी लड़ाई शुरू हुई उस समय दक्षिण से भारत की दो प्रमुख राज्य मैसूर और हैदराबाद अंग्रेज सहायक-सन्धि मे सम्मिलित होगए थे। अंग्रेज सेनापति वेलेजली ने दक्षिण-भारत मे एक शक्तिशाली सेना इकट्ठी की और मरहठा-प्रदेश की ओर कूच कर दिया। शीघ्र ही उसने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया और असाई की लड़ाई मे भोंसला और सिन्धिया की सेनाओं को हरा कर बुरहानपुर और असीरगढ के किलों पर अधिकार कर लिया। भोंसला ने नई सेना इकट्ठी कर वेलेजली का फिर सामना किया परन्तु अरगाव के युद्ध मे उसकी फिर हार हुई। वेलेजली ने बरार में गोपालगढ के किले पर अधिकार कर लिया और इसी बीच एक और अंग्रेज़ी सेना ने बगाल से आकर उड़ीसा पर अधिकार कर लिया। सन् १८०३ मे विवश राघोजी भोंसला को सन्धि करनी पड़ी। इसमे उड़ीसा और बरार अंग्रेजों को सौंप दिए और नागपुर को अंग्रेज-सहायक-सन्धि स्वीकार किया। उत्तर मे एक और अंग्रेज सेनापति, लार्ड लेक सिन्धिया

पंजाब की ओर भागा और महाराजा रणजीतसिंह से सहायता मागी परन्तु वहा भी वह फिर असफल रहा। सन् १८०५ में उसने भी सन्धि कर ली। भरतपुर के राजा ने होल्कर की सहायता की थी, इसलिए लार्ड लेक ने सन् १८०५ में भरतपुर के किले पर चढाई की। चार दफ़ा चढ़ाई की गई, परन्तु सफलता न मिली। अन्त में राजा ने लड़ाई से दुःखी होकर अंग्रेज़ों का आधिपत्य मान लिया और २० लाख रुपया हरजाने मे दिया। इस प्रकार भारत में मरहठा-शासन की समाप्ति हो गई।

मरहठा साम्राज्य के पतन के कारण

अब हम मरहठा-साम्राज्य के पतन के कारणों का अनुमान लगा सकते हैं। भारत के इतिहास में मरहठा-काल को तीन भागों में बाटा जा सकता है—(१) सन् १६७४ से १७१३ तक अर्थात् शिवाजी के राज्यपद ग्रहण करने से लेकर बालाजी विश्वनाथ के पेशवा बनने तक। इस युग में मरहठा-राजा स्वच्छन्द शासक था। राज्य के सब नौकरों को नकद वेतन मिलता था। (२) सन् १७१३ से १७६१ तक अर्थात् पानीपत की लड़ाई तक। इस काल मे मरहठा-नरेश के अधिकार कम हो गए और शासन-सूत्र पूर्ण रूप से पेशवा के अधिकार मे चला गया। इस युग में शासन-सम्बन्धी दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि अफसरों को मुफ्त जागीर देने की प्रणाली आरम्भ हुई। अब राज्य के नौकरों को जागीरदार बना दिया गया। (३) सन् १७६१ से १८०५ तक। इस काल मे पेशवा की शक्ति भी क्षीण हो गई और राज्य का सम्पूर्ण कार्य प्रधान आमात्य (Chief Secretary) के सिर पड़ा। जो मरहठा सरदार और जागीरदार पेशवा की आज्ञा मानने को तैयार थे उन्होंने भी प्रधान आमात्य की आज्ञाए मानने से इन्कार कर दिया। अब विभिन्न जागीरदारों ने स्वतन्त्र सत्ता

४ माधवराव नारायण के समय-की मरहठों और मैसूर की लड़ाई का वर्णन करो।

५ उत्तर-भारत में मरहठों के शासन का वर्णन करो और इसी सम्बन्ध में माधवराव सिन्धिया पर एक नोट लिखो।

६ खुरदा की लड़ाई के कारण बताओ और उसका क्या परिणाम हुआ ?

७ पेशवा बाजीराव द्वितीय के शासन-काल का वर्णन करो ?

८ अंग्रेज़ और मरहठों की दूसरी लड़ाई के कारण बताओ। यह लड़ाई कहा कहा हुई और उसके परिणाम क्या निकले ?

९ अंग्रेज और मरहठों की तीसरी लड़ाई का वर्णन करो और उसके परिणाम लिखो।

१० मरहठा-साम्राज्य के पतन के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

११ अहिल्याबाई का जीवन चरित्र लिखो। (प यू १९१८)

१२ लासवारी की लड़ाई के साथ कौन सी ऐतिहासिक घटना का सम्बन्ध है ? (पं यू १९२३)

१३. असाई की लड़ाई का भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा ? (पं यू १९२५)

१४ मरहठा-राज्य-सघ से तुम क्या समझते हो। दूसरी मरहठा लड़ाई के कारण और परिणाम लिखो। (प यू १९२५)

१५ भारत के इतिहास में बाजीराव द्वितीय ने कौन सा भाग लिया ? (पं यू १९३२)

१६ बादगाव की सन्धि पर संक्षिप्त नोट लिखो। (पं यू १९२२)

१७. नाना फड़नवीस पर संक्षिप्त नोट लिखो। (प. यू १

चौथा अध्याय

दक्षिण-भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उदय

१७१९-१८०५

मैसूर-राज्य की उत्पत्ति और वृद्धि

प्रथम भाग के १७वें अध्याय में हम बता चुके हैं कि सन् १५६५ में दक्षिण के मुसलमानी राज्यों ने मिलकर विजयनगर के हिन्दू-साम्राज्य को नष्ट कर डाला। इसके बाद यह राज्य बहुत से भागों में बंट गया। इसके पतन पर दक्षिण के प्रान्त अपने अपने सूबेदारों के अधीन स्वतन्त्र हो गए। इन्हीं स्वतन्त्र राज्यों में से एक श्रीरंगापटम् भी था। इस नगर के पास ही मैसूर की एक छोटी सी ज़मींदारी में दो यादव भाई रहते थे। जब सन् १६०९ में श्रीरंगापटम के सूबेदार की मृत्यु हो गई, उस समय राजा वादियर (Vadyar) मैसूर का ज़मींदार था। उसने श्रीरंगापटम् के नगर पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार छोटे से नए राज्य की नींव डाली। यही छोटा सा राज्य राजा देवराज के समय विस्तार को प्राप्त होने लगा। मैसूर के इस हिन्दू-राज्य के उत्थान से औरंगज़ेब प्रसन्न था। उसे आशा थी कि निकट भविष्य में यह राज्य मरहटों के विरुद्ध खड़ा किया जा सकेगा। औरंगज़ेब ने देवराज को मैसूर का राजा स्वीकार कर लिया और उसने एक हाथी-दांत का सिंहासन राजा देवराज को भेंट किया जो विशेष रूप से उसी के लिए बनवाया गया था। सन् १७०४ में राजा देवराज की मृत्यु हो गई और राज्य कुछ बालक राजाओं के हाथ आया। इसका परिणाम यह हुआ कि सब शासन-प्रबन्ध मन्त्रियों के हाथ चला गया।

इन बालक राजाओं में से एक का नाम कृष्णराज था। उसने सन् १७३४ से १७६६ तक राज्य किया। सन् १७४९ में हैदरअली मैसूर राज्य की सेना में एक साधारण सिपाही के रूप में प्रविष्ट हुआ, परन्तु शीघ्र ही उसने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

हैदरअली का उत्थान

जब सन् १७४९ में दक्षिण-भारत में गद्दी के लिए गृह-युद्ध छिड़ा उस समय मैसूर-राज्य ने भी झगड़े में पक्ष लेना आरम्भ कर दिया। सन् १७५५ तक मैसूर की सेनाएँ इसी लड़ाई में उलझी रहीं। इसी समय मैसूर-राज्य पर उत्तर से मरहठों और निज़ाम ने आक्रमण किया। हैदरअली ने इनका सामना कर इन्हें भगा दिया और इसी लिए वह प्रसिद्ध हो गया। सन् १७६० में वह मैसूर की सेनाओं का मुख्य सेनापति हो गया और सेना के खर्च के लिए राजा कृष्णराज ने उसे राज्य की आय का आधा भाग दे दिया। इसके कुछ ही काल पश्चात् सब शासन-प्रबन्ध हैदरअली के हाथ चला गया और राजा कृष्णराज एक कठपुतली मात्र रह गया। हैदरअली ने सन् १७६१ से लेकर १७८२ तक राज्य किया

हैदरअली

हैदरअली
१७६१-१७८२

जब सन् १७६१ में पानीपत की लड़ाई में मरहठों की पराजय हुई, उस समय अवसर पाकर हैदरअली ने उत्तर में अपना राज्य बढ़ा लिया। परन्तु, जैसा कि हम बता चुके हैं, हैदरअली ने जो प्रदेश जीते उन्हें १७६५-१७६९ के बीच मरहठों ने फिर वापस ले लिया। इसी समय सन् १७६७-६९ में हैदरअली को मदरास के अंग्रेज़ अधिकारियों से लड़ना पड़ा। परन्तु इस लड़ाई के कारण उसके प्रदेशों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। लड़ाई की समाप्ति पर मदरास के अंग्रेज़ अधिकारियों और हैदरअली में एक सन्धि हो गई जिससे यह निश्चय हुआ कि यदि दोनों में से किसी के राज्य पर कोई तीसरा आक्रमण करेगा तो दोनों एक-दूसरे की सहायता करेंगे। परन्तु बाद में जब मरहठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया तो अंग्रेज़ों ने उसे सहायता देने से इन्कार कर दिया। हैदरअली को विवश अपने राज्य का एक पर्याप्त भाग मरहठों के हाथ सौंपना पड़ा। परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी इस हानि की भरपाई कर ली। जब सन् १७७६ में अंग्रेज़ और मरहठों की पहली लड़ाई हुई, उस समय हैदरअली को इस बात का बहुत अच्छा अवसर मिला कि वह अपने खोए हुए प्रदेश वापस ले ले। नाना फड़नवीस ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध उसकी सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से उसे कृष्णा नदी तक का सारा प्रदेश वापस दे दिया। जब सन् १७८२ में हैदरअली मरा तो उसके पास मैसूर का वर्तमान राज्य ही न था बल्कि बीजापुर, धारवार, बेलगाम, बम्बई प्रान्त के दक्षिण में उत्तर कनाड़ा, बेलारी, अनन्तपुर, कडापा, सलीम, कोयमबिटोर और नीलगिरी के ज़िले तथा मदरास प्रान्त में मदूरा के प्रदेश का पश्चिमी भाग उसके अधीन था। इसके साथ पश्चिम में कूर्ग, मलाबार, और दक्षिण कनाड़ा पर भी उसका अधिकार था।

जब हैदरअली मरा उस समय वह मरहठों का एक सहायक था और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से युद्ध कर रहा था। सन् १७८२ में अंग्रेज़ और मरहठों मे सन्धि हो गई और सन् १७८४ में मैसूर राज्य और अंग्रेज़ों में भी समझौता हो गया।

टीपू सुलतान
१७८२-१७९९

इस वर्ष की सन्धि से वे प्रदेश जो एक दूसरे ने जीते थे, एक दूसरे को लौटा दिए गए। परन्तु टीपू सुलतान ऐसा व्यक्ति न था कि जो आराम से बैठ सके। अंग्रेजों के साथ युद्ध करने से पीछा छुड़ा कर उसने मरहठों को तंग करना शुरू किया। हम यह पहले बता चुके हैं कि इस पर मरहठों ने निज़ाम-अली से मिल कर टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अन्त में सन् १७८७ में बीजापुर और बेलगाम के ज़िले उसे मरहठों को सौंप देने पड़े और बेलारी तथा रायचूर के कुछ भाग निज़ाम को दिए गए। इसके बाद सन् १७८९ में उसने

टीपू सुलतान

ट्रावन्कोर पर आक्रमण किया। अंग्रेज़, निज़ाम और मरहठों ने ट्रावन्कोर की सहायता की। यह लड़ाई, जो तीसरी मैसूर लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है, सन् १७९० से १७९२ तक होती रही। टीपू सुल्तान को इतना दबाया गया कि अन्त को उसे अपने राज्य का आधा भाग अपने शत्रुओं को देना

पड़ा । धारवार और हुबली के ज़िले मरहठों के हिस्से में आए , मलाबार, कूर्ग और सलीम के प्रदेश अंग्रेज़ों ने लिए और रायचूर तथा बेलारी का शेष भाग निज़ाम के हाथ लगा । इस लड़ाई के बाद टीपू सुलतान ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध बड़ी भारी तैयारिया शुरू कर दीं । उसने अपनी सेना का पुन. संगठन किया । उसने फ्रांसीसी सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट को, जो उस समय मिस्र में था, भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया । उसने तुर्किस्तान (टर्की) से सहायता मागी और अब्दाली बादशाह शाहज़मा को भी लिखा कि भारत में आए और यहा के मुसलिम-राज्य की रक्षा करे । ब्रिटिश सरकार को इन तैयारियों का पूरा पता था । सन् १७९९ मे उससे कहा गया कि फ्रासीसियों का पक्ष छोड़ दो । उसने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया । इस पर अंग्रेज़ी सरकार ने टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । इस युद्ध में निज़ाम ने अंग्रेज़ों का साथ दिया । टीपू सुलतान लड़ाई में मारा गया और सारा मैसूर-राज्य अंग्रेज़ों के हाथ आ गया । उत्तर तथा दक्षिण कनाड़ा, नील-गिरी और कोयमबिटोर अंग्रेज़ों ने अपने पास रक्खे, अनन्तपुर और कडापा निज़ाम को दे दिए गए। मैसूर के शेष राज्य को एक नवीन राज्य बना दिया गया और मैसूर के अन्तिम हिन्दू राजा कृष्णराज के—जिसे हैदरअली ने गद्दी से उतार दिया था—पुत्र चामराज के हाथ सौंप दिया गया । टीपू सुलतान के पुत्रों तथा उसके परिवार के अन्य सदस्यों को पेन्शन दे दी गई और उन्हें मदरास के पास वेलोर के क़िले में भेज दिया गया । इस प्रकार हैदरअली के वंश का शासन समाप्त हुआ । अथवा हिन्दू राजा ने अंग्रेज़ी सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया ।

हैदरअली एक साधारण सैनिक से उन्नति करते करते एक शक्तिशाली शासक बना था। वह एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, एक वीर सैनिक और विशाल-हृदय शासक था। अपने किसी न किसी पड़ोसी राज्य से वह सदा मित्रता बनाये रखता था। उसका पुत्र टीपू सुलतान भी वीरता में अपने पिता से किसी बात में भी कम न था परन्तु वह उतना अच्छा सेनापति नहीं था। राजनीतिज्ञता में भी वह अपने पिता हैदर अली से कहीं पीछे था। व्यक्तिगत रूप से वह एक कट्टर मुसलमान था। परिणाम यह हुआ कि प्रजा उससे प्रेम नहीं रखती थी और न ही उसे किसी पड़ोसी राज्य ने कोई सहायता दी। उसे अंग्रेजों से अकेले ही लड़ना पड़ा और अपने राज्य तथा अपने जीवन इन दोनों से हाथ धोना पड़ा।

टीपू सुलतान का स्वभाव

जब सन् १७२० में कमरुद्दीन चिनकिलिच खाँ, जो आसफ़जाह निज़ाम-उल-मुल्क के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, दक्षिण का प्रधान मन्त्री और सूबेदार बनाया गया उस समय वह मालवा का सूबेदार था। बादशाह मुहम्मदशाह एक आनन्द-प्रिय शासक था और राज्य के मामलों में उसे कोई रुचि नहीं थी। इधर आसफ़जाह की शिक्षा-दीक्षा औरंगज़ेब के शासन-चक्र के अन्तिम काल में हुई थी। आसफ़जाह ने बहुत यत्न किया कि बादशाह ऐश्वर्य के जीवन से हट जाये परन्तु उसके प्रयत्न का कोई परिणाम न निकला। बादशाह भी अपने वज़ीर के तपस्यामय जीवन से ऊब गया। मुहम्मदशाह ने आसफ़जाह को गुजरात का सूबेदार बना कर भेज दिया और इधर हैदरकुली खाँ को, जो गुजरात का पहले से शासक था, गुप्त आदेश दे दिया कि उसका विरोध करे। परन्तु आसफ़जाह बादशाह के फन्दे में न फँसा। वह

हैदराबाद १७१६—१८०५

बहुत चतुर था। वह तेजी से गुजरात की तरफ बढ़ा और इससे पहले कि हैदरकुली खाँ उसका विरोध करने की तैयारियाँ करे, आसफजाह ने उसे अकस्मात् जा दबाया। गुजरात पर आसफजाह का अधिकार हो गया। तब वह अपना एक प्रतिनिधि प्रान्त पर शासन करने के लिये छोड़ कर स्वयं दिल्ली लौट आया। परन्तु अब उसे शीघ्र ही यह प्रतीत हो गया कि दिल्ली में उसका जीवन सुरक्षित नहीं। इसलिये उसने बादशाह से दक्षिण जाने की स्वीकृति माँगी। उसे तुरन्त ही स्वीकृति दे दी गई परन्तु साथ ही मुहम्मदशाह ने फिर औरङ्गाबाद के सूबेदार को गुप्त आदेश भेजा कि वह सूबेदार आसफजाह को आगे बढ़ने न दे। परिणाम यह हुआ कि सन् १७२४ में शक्करखेडा में लड़ाई हुई जिसमें औरङ्गाबाद का सूबेदार मारा गया और आसफजाह विजयी हुआ। इस युद्ध के बाद आसफजाह ने स्वतन्त्र सत्ता धारण कर ली। सन् १७२६ में उसने औरङ्गा-बाद से हटाकर हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया। उसने सन् १७२४ से लेकर १७४८ तक राज्य किया। सन् १७३० में गुजरात और मालवा पर से अपने अधिकार छोड़ दिये और यह प्रान्त मरहठों के हाथ लगे। जब सन् १७४८ में उसकी मृत्यु हुई तब उसके पुत्रों में गद्दी के लिये आपस में युद्ध छिड़ गया। आसफजाह के कई लड़के थे। सब से बड़ा पुत्र गाजी-उद्दीन था जो नादिरशाह के लौटने के उपरान्त सन् १७३९ से ही दिल्ली में मुहम्मदशाह का वज़ीर था। दूसरा पुत्र नासिरजङ्ग औरङ्गाबाद का शासक था। उसके तीन पुत्र और भी थे। सलाबत जंग, निजामअली और बसालत जंग। बीजापुर का राज्य उसके धेवते मुजफ्फरजंग के अधिकार में था। नासिरजंग ने औरङ्गाबाद से ही गद्दी पर अपने अधिकार की घोषणा कर दी और मुजफ्फरजंग भी अपने नाना के तख्त की आशा करके आगे बढ़ा। इधर गाजी-उद्दीन भी तख्त पर अपना अधिकार जमाने के उद्देश से

दिल्ली से हैदराबाद की ओर बढ़ा। परन्तु वह औरङ्गाबाद तक ही पहुँचने पाया था कि वहा गृह-षड्यन्त्र द्वारा विष खिला देने से उसका अन्त हो गया। सन् १७५० में नासिरजग मारा गया और सन् १७५१ मे मुजफ्फरजग भी मारा गया। इन सब घटनाओ का परिणाम यह निकला कि सलाबतजंग दक्षिण का शासक हो गया। अपने भाई निजामअली को उसने बरार सौंपा और बसालतजग को पूर्वी समुद्र तट पर गुन्तूर जिले का अधिकारी बना दिया। आगे चलकर हम बतायेंगे कि सलाबत जंग ने दक्षिण का यह शासन प्रमुख रूप से फ्रांसीसियो की सहायता पाकर जीता था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दक्षिण मे फ्रांसीसियो का प्रभाव सब से अधिक हो गया। फ्रांसीसी सेनापति बुसी हैदराबाद की सेनाओ का मुख्य सेनापति बन गया। सन् १७५३ म बुसी को उत्तरी सरकार की मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दिया गया जिससे वह अपनी सेना का खर्च चला सके। सन १७५७ मे फ्रांसीसियो ने उत्तरी सरकार मे अंग्रेजो की बस्ती पर अधिकार कर लिया। उस समय जनरल बुसी बगाल में फ्रांसीसियो की सहायता को जाने का विचार कर ही रहा था कि भारत के नये फ्रांसीसी गवर्नर कौण्ट लैली की आज्ञा प्राप्त हुई कि शीघ्र हैदराबाद छोडकर अर्काट चले आओ। सन् १७५८ मे जनरल बुसी न हैदराबाद छोड दिया। उसका पीठ मोडना था कि बंगाल से अंग्रजो ने उत्तरी सरकार पर और पश्चिम से मरहठो ने हैदराबाद पर चढाई कर दी। अंग्रेजो ने उत्तरी सरकार पर अधिकार कर लिया। उदगीर की लड़ाई में सन् १७५९ में मरहठो ने सलाबतजंग को हरा कर नासिक, अहमदनगर और बीजापुर पर अधिकार कर लिया। सन् १७६१ में सलाबतजंग के बाद उसका भाई निज़ामअली गद्दी पर बैठा और उसने सन् १८०३ तक राज्य किया। अपने ४२ वर्ष के शासन-काल मे वह मरहठो अथवा हैदर [illegible]

दोनों से लडता रहा। हम पहले बता चुके हैं कि सन् १७९५ में खुरदा की लडाई में उसे मरहठों के हाथों से बडी भारी हार खानी पड़ी परन्तु अपनी मैसूर की लडाइयों में, जो प्राय अंग्रेजों के साथ मिल कर लड़ी गई, उसने अपने राज्य के दक्षिणी सिरे पर कुछ और प्रान्त भी मिला लिए। सन् १७९८ में उसने अंग्रेजों से सहायक-सन्धि कर ली और अंग्रेजी सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उसके बाद उसका पुत्र सिकन्दरशाह गद्दी पर बैठा। अंग्रेज और मरहठों की दूसरी लड़ाई में अंग्रेजी सरकार को सहायता देने के कारण उसे बरार का प्रान्त भी, जिसे सन् १८०३ में भोंसला ने अंग्रेजों को दिया था, मिल गया।

अर्काट १७१६-१८०१

औरंगजेब ने दक्षिण-भारत को जीतकर जुलफिकार खां को उसका सूबेदार बना दिया। सन् १७१० में सआदतअली खां अर्काट का शासक बना। उसने सन् १७१० से लेकर १७३२ तक राज्य किया। वह अपने समय के योग्य शासकों में से गिना जाता था। जब सन् १७३२ में उसकी मृत्यु हुई तब उसका भतीजा दोस्तअली खां गद्दी का स्वामी हुआ और वह अर्काट का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। सन् १७३६ में उसने त्रिचनापली और मदूरा के हिन्दू-राज्यों को जीत लिया। उस का दामाद हुसैन दोस्त खां, जो भारतीय इतिहास में चांदा साहब के नाम से प्रसिद्ध है, इन नए जीते हुए प्रदेशों का शासक नियुक्त किया गया। परन्तु दोस्तअली का पुत्र और उत्तराधिकारी सफदरअली यह नहीं चाहता था कि हुसैन दोस्त को इतना सम्पूर्ण अधिकार दे दिया जाए। तंजौर के मराठा राजा प्रतापसिंह भी जो सतारा के राजा साहू के सम्बन्धी थे, त्रिचनापली में मुस्लिम शासन की स्थापना से असन्तुष्ट हुए। इसलिए उन्होंने राजा साहू को दक्षिण पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। सन् १७४० में साहू ने [illegible] भोंसला को

दक्षिण पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। दामलचरी दर्रा (Damalchari Pass) मे युद्ध हुआ। इस युद्ध मे दोस्तअली खाँ मारा गया और चादा साहब सन् १७४१ मे बन्दी करके सतारा भेज दिया गया। नवाब दोस्तअली के पुत्र सफदरअली ने राघोजी को १ करोड रुपया हर्जाने मे दिया और यह बात भी स्वीकार की कि वह १२ लाख रुपया वार्षिक मरहठो को कर मे देता रहेगा।

दोस्तअली के मारे जाने के पश्चात् चांदा साहब के कुटुम्ब ने फ्रासीसी इलाका पाण्डेचरी मे जाकर आश्रय लिया।

नवाब अनवरुद्दीन १७४४ १९७४

सन् १७४२ मे नवाब सफदरअली को उसके किसी सम्बन्धी ने मार डाला और तब उसका पुत्र मुहम्मद सईद, जो अभी बच्चा ही था, अर्काट का नवाब हुआ। मरहठो के आक्रमण ने अर्काट को छिन्न-भिन्न कर दिया और थोडे ही समय में उसके कई नवाबो का परिवर्तन हो गया। ऐसी ही परिस्थितियो में आसफजाह निजाम-उल-मुल्क ने दक्षिण की ओर अपना ध्यान किया। सन् १७४३ मे वह एक बडी भारी सेना के साथ अर्काट पर चढ दौडा और उसे जीत कर सन् १७४४ मे अपने एक अफसर अनवरुद्दीन को वहा का शासक बना कर छोड आया। उसका राज्य सन् १७४९ तक रहा।

अर्काट में फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ो की पहली लड़ाई

जिस समय सन् १७४४ मे अनवरुद्दीन अर्काट का शासक बना उसी समय यूरोप मे आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रश्न पर युद्ध छिड गया था। इस युद्ध मे इंगलैंड और फ्रांस एक दूसरे के विरुद्ध मे थे। कुछ समय तक यह युद्ध यूरोप तक ही सीमित रहा परन्तु सन् १७४५ मे अंग्रेजी बेडे के कुछ जंगी जहाज भारत पहुंचे और उन्होंने फ्रांसीसी बंदरगाहों में लूटमार मचा दी।

इस समय भारत में फ्रांसीसी बस्तियों का गवर्नर डूप्ले था। उसने नवाब अनवरुद्दीन से रक्षा की प्रार्थना की। नवाब ने तत्काल ही अंग्रेज अधिकारियों को लिखा कि मुगल साम्राज्य के निष्पक्ष इलाके में युद्ध सम्बन्धी व्यवसाय बन्द कर दिये जाएँ। तब अंग्रेजों ने समुद्र में फ्रांसीसी जहाजों को पकड़ना शुरू कर दिया। अन्त में डूप्ले ने विवश होकर फ्रांस की घरू सरकार से अपनी रक्षा के लिये फ्रांसीसी बेड़े के छ जहाज माँगे उस समय हिन्द महासागर स्थित मारीशस का द्वीप पूर्व मे फ्रांसीसियों की नौ सेना का केन्द्र था। सन् १७४७ में फ्रांसीसी नौ-सेना ने भारतीय समुद्र तट पर उत्तरी और मद्रास के अंग्रेजी इलाके पर घेरा डाल लिया। जब नवाब अनवरुद्दीन ने इस बात का विरोध किया कि फ्रांसीसियों ने भारत की शान्ति क्यों भंग की, तो डूप्ले ने रन्त आश्वासन दिया कि मद्रास को जीत कर नवाब के हवाले कर दूँगा। परन्तु जब मद्रास पर फ्रांसीसियों का वास्तविक अधिकार हो गया तो डूप्ले ने इसे नवाब को सौंपने से इनकार कर दिया। इस पर नवाब ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध एक सेना भेजी परन्तु वह सेना हार ग । आधुनिक काल मे यह पहला अवसर था कि यूरोपियनों ने भारतीयों को युद्ध में हराया। नवाब की सेना को हराकर फ्रांसीसियों ने दक्षिण के सब अंग्रेजी देशों पर अधिकार कर लिया। अन्त में जब सन् १७४८ में दोनो पक्षों में सन्धि हो गई तो अंग्रेजों के छीने गए समस्त प्रदेश उन्हें लौटा दिए गए। परन्तु क्योंकि इस युद्ध मे अनवरुद्दीन ने कई बार अंग्रेजो का पक्ष लिया था, इस लिए डूप्ले उसका शत्रु बन गया।

अर्काट मे उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध

पहले बताया गया है कि सन् १७४१ में चाँदा साहब को बन्दी बनाकर सतारा भेज दिया गया। सन् १७४८ मे जब वृद्ध आसफजाह निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु हो गई तब पेशवा बाला जी बाजीराव और चाँदा साहब में, जो स्वतन्त्र कर दिया गया था, समझौता हो गया।

इसके बाद ही चांदा साहब बीजापुर के नवाब मुजफ्फर जंग के पास पहुँचा। मुजफ्फर जंग को दक्षिण की गद्दी का अधिकार था, इसलिये वह अर्काट की गद्दी पर चांदा साहब को सहायता देने के लिये तैयार हो गया। फ्रांसीसी गवर्नर ने भी, जो नवाब अनवरुद्दीन के विरुद्ध था, चांदा साहब का साथ देना स्वीकार किया। इस प्रकार सब प्रबन्ध ठीक कर मुजफ्फर जंग और चांदा साहब ने अर्काट पर चढ़ाई कर दी। दामलचरी (Damalcheri) दर्रा के समीप लड़ाई हुई। इस लड़ाई में अनवरुद्दीन मारा गया और उसके पुत्र महम्मदअली ने त्रिचनापली के क़िले में आश्रय लिया।

अर्काट में अंग्रेजों और फ्राँसीसियों की दूसरा लड़ाई

जब अर्काट की उक्त घटनाओं का समाचार औरंगाबाद पहुँचा तो नासिरजंग ने, जो (हैदराबाद) दक्खिन के तख्त पर अधिकार जमा बैठा था, दक्षिण की ओर कूच कर दिया। उसने दक्षिण के अपने सब सहायकों को सहायता के लिये लिख भेजा। मदरास के अंग्रेजों और त्रिचनापली से मुहम्मदअली को भी सहायता के लिए बुला भेजा गया। इधर फ्रांसीसियों ने चुपके से जिंजी के महत्त्व-पूर्ण क़िले पर अधिकार कर लिया। जब नासिरजंग जिंजी की ओर बढ़ा तो उसी के कुछ साथियों ने उसे मार डाला। अब मुजफ्फरजंग दक्खन का सूबेदार बन गया और चांदा साहब को अर्काट का नवाब स्वीकार किया गया। इससे दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। उनके ही नियुक्त पुरुष दक्षिण की गद्दी और अर्काट की नवाबी दोनों पर विराजमान थे। बुसी को दक्षिण की सेनाओं का सेनापति बनाया गया। इसके बाद चांदा साहब और फ्रांसीसियों ने मिलकर त्रिचनापल्ली को घेर लिया जहां कि मुहम्मदअली छिपा बैठा था। मुहम्मदअली ने मदरास के अंग्रेजों, तंजौर और गूटी के मरहठा तथा पुदुकोटा और मैसूर के हिन्दू राजाओं से सहायता की प्रार्थना की। मैसूर ने इस शर्त पर

सहायता देना स्वीकार किया कि विजय के बाद त्रिचनापली मैसूर-राज्य को सौंप दिया जाए। इधर मेजर लारेंस के अधीन एक अंग्रेजी सेना भी सहायता के लिए भेजी गई।

क्लाइव की प्रसिद्धि

इस समय मदरास में एक अंग्रेज युवक राबर्ट क्लाइव कम्पनी में क्लर्की का काम करता था। उसे सैनिक विषयों में बड़ी रुचि थी। उसने सोचा कि चांदा साहब की सारी सेना तो त्रिचनापली के घेरे में लगी हुई है इस लिये उसकी अपनी राजधानी अर्काट अवश्य अरक्षित अवस्था मे होगी। अतएव उसने प्रस्ताव रखा कि अर्काट पर आक्रमण करने के लिए एक छोटी सी सेना भेजी जानी चाहिए। इस पर चांदा साहब अपनी कुछ न कुछ सेना त्रिचनापली से अर्काट जरूर भेजेगा। क्लाइव की इस योजना को बहुत पसन्द किया गया और स्वय उसी के अधीन एक छोटी सी सेना अर्काट भेजी गई। अर्काट पर आसानी से अधिकार कर लिया गया। जब यह समाचार चांदा साहब के पास पहुँचा तो वह बहुत बिगडा। उसने १० हजार सेना त्रिचनापली से अर्काट भेज दी। क्लाइव और उसकी सेना अर्काट मे घिर गई। दो महीने तक ये लोग अर्काट मे घिरे पडे रहे। उसी समय गूटी का मरहठा सरदार, जो मुहम्मदअली की सहायता को जा रहा था, अर्काट के पास से गुजरा। उसने चांदा साहब की सेना पर आक्रमण किया और इस प्रकार क्लाइव को सहायता पहुँचाई। चांदा साहब की सेना को अर्काट से वापस लौटना पडा।

डूप्ले की वापसी

इधर मैसूर, तजोर, पुदुकोटा और मदरास की सम्मिलित सेनाओं की चेष्टाओ के कारण चाँदा साहब को सन् १७५२ मे अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और इसके बाद शीघ्र ही तंजोर के राजा की आज्ञा से उसे मार डाला गया। अब मुहम्मदअली अर्काट का निर्विवाद शासक बन गया। परन्तु जब मैसूर के सेनापति ने उससे त्रिचनापली की माँग की, जैसा कि समझौता हो चुका

विरुद्ध लड़ाई करे। हैदराबाद से बुसी को वापस बुलाकर लैली ने बहुत भारी गलती की, क्योंकि ज्योंही उसने हैदराबाद छोड़ा कि दक्षिण में फ्रांसीसियों का सब प्रभाव एकदम जाता रहा। अब फ्रांसीसी हैदराबाद के साधनों का उस प्रकार प्रयोग नहीं कर सकते थे जिस प्रकार कि अंग्रेज बंगाल के साधनों का। अर्काट में बुसी के पहुंचने से फ्रांसीसियों को कोई लाभ न था। यद्यपि मदरास को घेर लिया गया था तब भी लड़ाई जारी रखने के लिए धन की आवश्यकता थी। कौंट लैली पांडेचरी से कुछ भी धन प्राप्त न कर सकता था। अतः धन प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने तंजौर पर आक्रमण कर दिया और वहां के राज्य को विवश किया कि वह धन दे। परन्तु इन बातों से फ्रांसीसी देश में अप्रिय बन गए। इन बातों ने कई देशी शक्तियों को फ्रांसीसियों का शत्रु बना दिया। दूसरी तरफ अंग्रेज मदरास में जमे बैठे रहे। अंग्रेजी जंगी जहाजों का एक बेड़ा भारतीय सागर में आ पहुंचा और विवश फ्रांसीसियों को मदरास का घेरा उठा लेना पड़ा। क्लाइव ने भी जो इस समय बंगाल में था, वहां से अर्काट को नई सहायता भेजी। सर आयर कूट इस नई सेना का सेनापति था। उसने सन १७६० में वांडिवाश के स्थान में फ्रांसीसियों को बुरी तरह पराजित किया। इस लड़ाई के बाद फ्रांसीसियों की सब बस्तियों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। पांडेचरी नगर भी घेर लिया गया और सन् १७६१ के प्रारम्भ में उसे भी अंग्रेजों ने ले लिया। सन् १७६३ में सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति हुई। इस युद्ध की समाप्ति पर पेरिस में एक सन्धि हुई। इसके अनुसार पांडेचरी फ्रांसीसियों को वापस लौटा दिया गया। इस युद्ध के बाद दक्षिण से फ्रांसीसियों का प्रभाव जाता रहा और देश के इस भाग में अंग्रेज लोगों का राजनीतिक प्रभाव जम गया। अब अर्काट का नवाब मुहम्मदअली मदरास के अंग्रेज अधिकारियों के हाथ की कठपुतली बन गया। जब सन् १८०१

में उसकी मृत्यु हुई तो उसके प्रदेशों को भारत के अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

दक्षिण भारत में अंग्रेज़ों की विजय के कारण

दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंग्रेजों के विजयी होने के कई कारण हैं.— (१) ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास खूब रुपया था और इसलिये वह बहुत दिनों तक युद्ध का खर्च उठा सकती थी। दूसरी तरफ फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास धन न था और वह इसके युद्ध का खर्च उठाने में असमर्थ थी। (२) इंगलैंड की ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थों में कोई टक्कर न थी। इसलिए ब्रिटिश सरकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सहायता देती रही। दूसरी तरफ फ्रांसीसी सरकार फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कोई कार्य-स्वतन्त्रता देना नहीं चाहती थी, और न ही फ्रांसीसी सरकार के अधिकारी फ्रेंच कम्पनी के अधिकारियों के साथ सहयोग कर सकते थे। (३) अंग्रेजी जहाजी बेड़े का सागरों पर सर्वोच्च अधिकार था। ब्रिटिश कम्पनी की सहायता को वह हर कहीं पहुँच सकता था। फ्रांसीसी बेड़ा ऐसा करने में असमर्थ था। (४) फ्रांस एक महाद्वीप सम्बन्धी प्रदेश है और इसलिये यूरोप की महाद्वीप सम्बन्धी लड़ाइयों में उसे सदा लिप्त होना पड़ता है। इंगलैंड की स्थिति ऐसी नहीं। इसलिये वह सरलता से अपना ध्यान समुद्र पार के देशों के मामलों पर आकर्षित कर सकता है। इन्हीं कारणों से फ्रांसीसी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में असमर्थ रहे और अंग्रेज़ों को इसमें सफलता मिली।

प्रश्न

१. मैसूर-राज्य की उत्पत्ति और विकास का वर्णन करो।

२. हैदरअली का जीवन चरित लिखो।

३. टीपू सुलतान का जीवन चरित लिखो।

४. हैदराबाद रियासत की उत्पति का वर्णन करो और उसका सन् १७१६ से लेकर १७६८ तक का इतिहास बताओ।

५. सन् १७१० से लेकर १८०१ तक अर्काट का इतिहास लिखो।

६. किन परिस्थितियों में अंग्रेजो और फ्रांसीसियों का दक्षिण-भारत में पहले-पहल सामना हुआ ?

७. किन परिस्थितियों में अंग्रेज और फ्राँसीसियों ने अर्काट के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध मे भाग लिया ?

८. यूरोप मे सप्तवर्षीय युद्ध के सम्बन्ध में दक्षिण भारत मे अंग्रेज और फ्राँसीसियों की जो तीसरी लडाई हुई उसका वर्णन करो।

९ क्या कारण है कि फ्राँसीसी भारतवर्ष मे अपना साम्राज्य स्थापन न कर सके ?

१०. एक नकशा खीचो और उसके द्वारा अंग्रेजों और फ्राँसीसियों की पहली लडाइयों का वर्णन करो। (पं. यू. १९१८)

११. कर्नाटक (अर्काट) युद्धों का संक्षिप्त विवरण दो और फ्राँसीसियों की पराजय के कारण बताओ। (पं. यू. १९३०, १९३२)

१२. भारत के इतिहास पर श्रृङ्गापटम् की लडाई का क्या प्रभाव पड़ा ? (पं. यू. १९२५, १९३३)

१३. डूप्ले पर एक नोट लिखो। (पं. यू. १९२५)

१४. टीपू सुलतान पर एक संक्षित नोट लिखो।

(पं. यू १९२७, १९३३)

१५. हैदराबाद के निजामअली ने भारतीय इतिहास मे क्या भाग लिया ? (पं. यू. १९३२)

१६. हैदरअली के जीवन और उसके कार्यों का संक्षिप्त विवरण लिखो। (पं यू. १९३३)

पाँचवाँ अध्याय

बंगाल में अंग्रेज़ों की शक्ति का उत्थान

१७१९—१८०५

मुर्शिदकुली खाँ और उसके वंशज

मुर्शिदकुली खाँ का जन्म एक ब्राह्मण कुल में हुआ था, परन्तु बचपन में ही उसे एक गुलाम के रूप में बेच दिया गया। मुसलमान घराने में उसका पालन-पोषण हुआ और औरंगजेब ने उसे बंगाल प्रान्त का दीवान नियुक्त किया। जब सन् १७१३ में फर्रुखसियर हिन्दोस्तान का बादशाह बना तो मुर्शिदकुलीखाँ को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का बादशाह बना दिया गया। जब सैयद भाइयों के प्रभाव से बादशाह केवल नाममात्र को रह गया तब मुर्शिदकुलीखाँ दिल्ली की केन्द्रीय सरकार की परवाह न कर बंगाल में प्राय: स्वतन्त्र हो गया। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् १६८० में हुगली (बंगाल) में अपनी बस्ती स्थापित की और सन् १६६० में कलकत्ता नगर की स्थापना की तथा सन् १६६८ में उस प्रदेश के, जिस पर कलकत्ता बसा था, ज़मींदार हो गए। सन् १७१७ में उन्होंने बादशाह फर्रुखसियर से आसपास की कुछ ज़मींदारी खरीदने का अधिकार प्राप्त किया, परन्तु मुर्शिदकुली खाँ ने बादशाह के फरमान (आज्ञा-पत्र) की कोई परवाह न की और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ज़मींदारी खरीदने की इजाज़त देने से इनकार कर दिया। बस, इसी समय से कलकत्ता के अंग्रेज़ व्यापारियों और नवाब मुर्शिदाबाद की सरकार में स्थायी झगड़ा शुरू

मुर्शिदकुली खाँ ने सन् १७२६ तक राज किया और उस

दामाद शुजा खाँ गद्दी पर बैठा। शुजा खाँ की सन् १७३६ में मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर राज्य में अव्यवस्था फैल गई। उसका पुत्र सरफराज खाँ एक दुर्बल शासक था और इसलिए उसके दरबार में दलबन्दी का जोर था। अन्त में सन् १७४० में बिहार के नवाब अलीवर्दी खाँ ने सरफराज खाँ को गद्दी से उतार दिया और बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में एक नए वंश की स्थापना की।

अलीवर्दी खाँ १७४०—१७५६

अलीवर्दी खाँ ने सन् १७४०–५६ तक अर्थात् १६ वर्ष तक राज्य किया। परन्तु उसका सारा समय या तो अपने पठान सरदारों के विद्रोह दबाने या मरहठों से लड़ने में व्यतीत हुआ। मरहठों ने सन् १७४१ से लेकर १७५१ तक कम से कम १० बार बङ्गाल और बिहार पर आक्रमण किया। अन्त में सन् १७५१ में अलीवर्दी खाँ को मरहठों को उड़ीसा देना पड़ा और साथ ही बंगाल और बिहार के लिए १२ लाख वार्षिक चौथ देनी भी स्वीकार की। जिस समय मरहठा लोग बङ्गाल पर आक्रमण कर रहे थे उन्हीं दिनों कलकत्ता के अंग्रेज व्यपारियों ने अपनी बस्ती की रक्षा के लिए सुप्रसिद्ध मरहटा खाई खोदी और फोर्ट विलियम के किले को दृढ़ बनाया था। सन् १७५६ में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु होने पर उसका धेवता सिराज-उद्दौला गद्दी पर बैठा।

सिराज-उद्दौला १७५६—५७

सिराज-उद्दौला बङ्गाल की गद्दी पर बैठने के समय केवल २८ वर्ष का युवक था। वह स्वभाव से ही बहुत सन्देहशील और निर्दय था। शासन-प्रबन्ध के विषयों में उसे तनिक भी अनुभव न था। उसने आरम्भ से ही अपनी प्रजा को तंग करना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में गड़बड़ पैदा हो गई। दरबारी उससे नाराज थे और प्रजा भी उससे अप्रसन्न थी। अलीवर्दी खाँ का बहनोई, मीर जाफर अली उसकी

सेनाओ का सेनापति था। वह भी नवाब से असन्तुष्ट था। ऐसी ही परिस्थितियो में सिराज-उद्दौला ने कलकत्ता के अंग्रेज अधिकारियो से बिगड़ कर आत्मघातक नीति को अपनाया। जिस समय सन् १७५६ मे अलीवर्दी खा की मृत्यु हुई थी, तभी से कलकत्ता के अंग्रेज अधिकारियो को फ्रांसीसियो से लडाई छिडने का हर समय भय लगा रहता था। इसी कारण अपने को तैयार करने के लिये उन्होने फोर्ट विलियम के किले को दृढ बनाना शुरू कर दिया था। सिराज उद्दौला को कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों की ये हलचल पसन्द न थी। उसे किले की नई बनावट को गिरा देने की आज्ञा दी। अंग्रेजो ने नवाब की इच्छाओ की कोई परवाह न की। ठीक उसी समय एक और घटना हुई। सिराज उद्दौला ढाका के एक मारवाडी व्यापारी कृष्णदास को पकडने की फिक मे था कि वह कलकत्ता चला गया। नवाब ने चाहा कि कृष्णदास को अंग्रेज उसके हवाले कर दे परन्तु अंग्रेज-अधिकारियो ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इन सब बातो से सिराज उद्दौला ने निश्चय कर लिया कि अंग्रेजो को बङ्गाल से निकाल दिया जाए। उसने शीघ्र ही कासिम बाजार के अंग्रेजी कारखाने पर अधिकार कर लिया और तब ५० हजार सेना लेकर कलकत्ता पर चढ दौडा।

कलकत्ता की काल कोठरी

जिस समय सिराज-उद्दौला ने कलकत्ता पर चढाई की उस समय फोर्ट विलियम में केवल २०० व्यक्ति थे जिनमें से अंग्रेजो की सख्या २६० थी। उस समय ड्रेक नाम का एक व्यक्ति बङ्गाल की अंग्रेजी-बस्तियो का गवर्नर था। सिराजउद्दौला के पहुचते ही वह कुछ अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के साथ एक जहाज में सवार हो हुगली नदी के मुहाने की ओर भाग गया और फुलटा द्वीप में जाकर आश्रय लिया। फोर्ट विलियम में कलकत्ता का कलक्टर हॉलवेल तथा कुछ अंग्रेज-स्त्री-पुरुष रह गये। नवाब ने तुरन्त फोर्ट विलियम के किले पर अधिकार कर लिया

और उन सब को कैद कर लिया। कहा जाता है कि इस समय १४६ स्त्री-पुरुष कैद किये गये थे। जून की गर्मी पड़ रही थी और ऐसी ही गर्मी मे कहा जाता है कि इन बन्दियों को एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिया गया जो किले में कैदखाने का काम देती थी। दूसरे दिन जब दरवाजा खोला गया तो कहते हैं कि केवल २३ व्यक्ति जीवित बाहर निकले।

क्लाइव द्वारा कलकत्ता का उद्धार

जिस समय इन भयानक घटनाओ का समाचार मदरास पहुँचा, उस समय राबर्ट क्लाइव और एडमिरल वाटसन छुट्टियाँ मनाकर इँगलैण्ड से वापस लौटे ही थे। मदरास के अधिकारियो ने शीघ्र ही २५०० सैनिक क्लाइव की अध्यक्षता मे सौप उसे तथा मि० वाटसन को बङ्गाल की ओर भेजा। सन् १७५६ के अन्त में ये लोग हुगली नदी के मुहाने पर पहुँचे और ड्रेक तथा उसके साथियो को साथ लेकर कलकत्ता की ओर चल पडे। वर्तमान स्यालदह (Sealdah) के समीप नवाब की सेनाओ से उनकी मुठभेड हुई। नवाब की सेनाओ को हराकर उन्होंने कलकत्ता पर फिर से अधिकार कर लिया। इसके बाद डमडम के समीप नवाब की सेनाओं की फिर हार हुई। वास्तव में नवाब इस समय बहुत ही व्याकुल हो गया था। सन् १७५७ में

राबर्ट क्लाइव

अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। दिल्ली को फिर से

लूटा गया और हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थान मथुरा में भी खूब लूट-मार की गई। फिर यह भी किसी को मालूम न था कि अब्दाली के और विचार क्या हैं। नवाब को यह डर लग रहा था कि यह अफगान कहीं बङ्गाल पर आक्रमण न कर बैठे। इसलिये वह यह भी निश्चय नहीं कर सका कि वह अपनी सेनायें लेकर उत्तर की ओर बढ़े और अहमदशाह अब्दाली से लोहा ले अथवा दक्षिण की ओर जाकर अंग्रेजी सेनाओं का सामना करे। इस समय यूरोप के सप्तवर्षीय युद्ध के आरम्भ का समाचार भारत पहुँच चुका था और क्लाइव को प्रतिदिन यह भय लगा रहता था कि फ्रांसीसी सेनापति बुसी हैदराबाद से बङ्गाल, सिराज-उद्दौला की सहायता को, न पहुँच जाए। बुसी ने पहले ही उत्तरी सरकार की समस्त अंग्रेजी बस्तियों पर अधिकार कर लिया था और उसे भय था कि यदि फ्रांसीसी सेना सिराज-उद्दौला की सेना से मिल गई तो अंग्रेजों के लिये नवाब और फ्रांसीसी दोनों सम्मिलित सेनाओं के सामने डटे रहना असम्भव हो जाएगा। अत. दोनों दल सन्धि के इच्छुक थे। सन् १७५७ के फरवरी मास में दोनों में सन्धि हो गई। नवाब ने अंग्रेजों को उनके सब कार-खाने और बस्तियां वापस लौटाना स्वीकार किया। उसने यह सब खजाना और सामान आदि भी वापस दे दिया जो उसकी सेना ने कलकत्ता से लूटा था। क्लाइव की यह भी इच्छा थी कि नवाब के साथ फ्रांसीसियों के विरुद्ध एक दूसरे की सहायता देने के लिये भी सन्धि हो जाये, परन्तु ऐसा न हो सका।

प्लासी की लड़ाई १७५७

सिराज-उद्दौला से सन्धि कर क्लाइव ने फ्रांसीसियों की बस्ती चन्द्र-नगर पर चढ़ाई की। उस समय चन्द्रनगर में बहुत कम फ्रांसीसी सैनिक थे। और वे डट कर सामना भी न कर सकते थे। अंग्रेजों ने चन्द्रनगर पर अधिकार कर लिया। फ्रांसीसी सैनिक भाग कर मुर्शिदाबाद पहुँचे और उन्होंने नवाब के यहां नौकरी कर ली। उस समय बुसी हैदराबाद

अमीचन्द क्लाइव के पास पहुँचा और उसे धमकी दी कि यदि ३० लाख रुपया न दोगे तो सब भेद खोल दूंगा। क्लाइव ने इस आपत्ति का सामना करने के लिये एक चाल सोची। वह उसे रुपया देना मान गया। मीर जाफ़र और अंग्रेज़ अधिकारियों में हुए समझौते की दो प्रतियां बनाई गयीं। एक सफ़ेद कागज़ पर और दूसरी लाल पर। सफ़ेद कागज़ पर जो शर्तें लिखी गयी वे वास्तविक थीं और उनमें अमीचन्द के विषय में कोई चर्चा न थी। लाल कागज़ पर जो एकरारनामा लिखा गया वह जाली था और उस पर अमीचन्द को ३० लाख रुपया देने की चर्चा थी। एडमिरल वाटसन ने इस जाली एकरारनामे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। इस पर क्लाइव ने उसके जाली हस्ताक्षर बना लिये। इस प्रकार अमीचन्द का मुँह बन्द कर दिया गया। जब ये सब बातें निर्णय हो गयीं तो क्लाइव ने सिराज-उद्दौला पर यह दोष लगाया कि वह फ्रांसीसियों से मिला हुआ है और फरवरी सन् १७५७ की सन्धि का पालन नहीं कर रहा। जब नवाब की ओर से इसका कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ, तब क्लाइव ३००० सैनिकों को साथ लेकर मुर्शिदाबाद पर चढ़ दौड़ा। मुर्शिदाबाद से २० मील इधर प्लासी नामक स्थान पर नवाब की सेना से उसका सामना हुआ। २३ जून सन् १७५७ को युद्ध आरम्भ हुआ मीरजाफ़र नवाब की सेनाओं का सेनापति था। लड़ाई में मीरजाफ़र और अन्य सरदार तटस्थ रहे और युद्ध का सब भार नवाब के फ्रांसीसी सैनिकों पर पड़ा। अन्त में सिराज-उद्दौला मैदान से भाग निकला। उनका पीछा किया गया और मीरजाफ़र के पुत्र ने उसे मौत के घाट उतार दिया। अंग्रेज़ों की जीत हुई।

मीरजाफ़र १७५७—१७६१

प्लासी की लड़ाई के बाद मीरजाफ़र को बंगाल और बिहार का नवाब स्वीकार किया गया। मीरजाफ़र ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कलकत्ता के आसपास के २४ परगनों की ज़मींदारी का अधिकार दिया और

यह वचन दिया कि फ्राँसीसियों को नई बस्ती स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। उसने यह बात स्वीकार की कि हुगली नगर के दक्षिण हुगली नदी पर कोई किला नहीं बनाया जाएगा, अंग्रेजों के शत्रुओं को अपना शत्रु समझेगा और उनके मित्रों को अपना मित्र। सिराज-उद्दौला द्वारा कलकत्ता की लूट की भरपाई करने के लिए उसने कलकत्ता के व्यापारियों और अंग्रेजी कम्पनी को १७९ लाख रुपया, प्लासी के युद्ध में लड़ने वाले अंग्रेज सैनिकों के लिए ६० लाख रुपया और क्लाइव, कलकत्ता के गवर्नर तथा कंपनी के अन्य अधिकारियों को उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप ५४ लाख रुपया देना भी स्वीकार किया। अर्थात् इस युद्ध के परिणामरूप मीर जाफ़र ने कुल २८६ लाख रुपया देना स्वीकार किया। अमींचन्द को कोरा जवाब दे दिया गया। इस सब धन को देने के लिए जब मुर्शिदाबाद के खजाने की जांच की गई तो पता लगा कि उसमें केवल १५७ लाख रुपया शेष है। कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें कुल रुपया दिया जाए। इसलिये सन् १७५८ में मीरजाफर ने उन्हे तब तक के लिये नदिया और बर्दवान का कर वसूल करने के अधिकार दिया कि जब तक उनका रुपया वसूल न हो जाए।

बंगाल पर मुगलों का आक्रमण

मीरजाफर ने अभी कठिनता से अंग्रेजों की मांगों से छुटकारा पाया था कि समाचार मिला कि दिल्ली की गद्दी का अधिकारी शाहजादा अलीगौहर ने इलाहाबाद के नवाब की सहायता से बिहार पर चढ़ाई कर दी है! मीर जाफर को फिर क्लाइव से सहायता माँगनी पड़ी। क्लाइव और कप्तान फाक्स की अध्यक्षता में एक अंग्रेजी सेना बिहार को बढ़ी, परन्तु इससे पूर्व ही कि ये सेना वहां तक पहुँचती, इलाहाबाद का

नवाब शीघ्र वापिस लौट गया क्योंकि उसके अपने इलाके पर अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने चढ़ाई कर दी थी। शाहज़ादा अलीगौहर अकेला रह गया और वह भाग कर बनारस के राजा बलवन्तसिंह के यहाँ चला गया। क्लाइव को ज़रा भी युद्ध नहीं करना पड़ा और वह इस प्रसिद्धि के साथ वापस आया कि उसने आक्रमण विफल कर दिया। मीरजाफर ने क्लाइव को सैफ-ए-जंग की पदवी दी और जागीर में २४ परगनों की मालगुजारी दी। इन घटनाओं के पश्चात् अंग्रेज लोग बंगाल में सर्वोपरि हो गये। सन् १७५९ में क्लाइव ने एक सेना कर्नल फोर्ड की अध्यक्षता में उत्तरी सरकार को जीतने के लिये भेजी और उसे सुगमता से सफलता प्राप्त हो गई। सन् १७६० में क्लाइव फिर छुट्टी पर इंगलैंड चला गया परन्तु उसके जाने के कुछ ही समय पश्चात् बंगाल में नई उलझनें उत्पन्न हो गईं। जब से मीरजाफर ने शाहज़ादा अलीगौहर के विरुद्ध अंग्रेजों से सैनिक सहायता माँगी थी, तभी से कलकत्ता के अंग्रेज अधिकारियों ने अपनी सैनिक-शक्ति बढ़ा ली थी। मीरजाफर ने इस अधिक खर्च को देने का वचन दिया था, परन्तु दी उसने एक पाई भी न थी। मुर्शिदाबाद का खजाना बिलकुल खाली हो गया था। स्थानीय अधिकारियों और जागीर-दारों ने कर देना बिलकुल बन्द कर दिया था। मीरजाफर भी शासन-प्रबन्ध के विषयों पर ध्यान न देता था। अन्त को निश्चय किया गया कि उसके दामाद मीरक़ासिम को नायब नवाब बनाया जाए। मीर जाफर ने इस विचार को पसन्द न किया। अन्त को सन् १७६१ में उसे गद्दी से उतार दिया गया और मीरक़ासिम को बंगाल और बिहार की गद्दी पर बैठाया गया। उसने कम्पनी को इसके बदले में बर्दवान, चटगाँव और मिदनापुर के जिलों की मालगुजारी दी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज अधिकारियों को भी बहुत सा रुपया दिया गया।

मीरक़ासिम एक योग्य व्यक्ति था। [illegible]

मीरक़ासिम
१७६०-१७६१

प्लासी के युद्ध के बाद से सब सैनिक शक्ति ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथो मे चली गई है। अतः अपनी सत्ता की पुनः स्थापना के लिये यह आवश्यक था कि वह अपनी सेना का सगठन करे परन्तु कठिनाई यह थी कि मुर्शिदाबाद के खजाने में पैसा बिलकुल न था। फर्रुखसियर के समय से लेकर अग्रजी माल के आयात और निर्यात पर कोई चुगी नही लगाई गई थी। परन्तु अन्य अन्तर्देशीय व्यापार पर चुंगी थी। प्लासी के युद्ध के पश्चात् अग्रेज व्यापारियो ने अन्तर्देशीय व्यापार मे भी भाग लेना शुरू कर दिया और किसी को साहस न होता था कि उनसे माल इधर उधर लेजाने पर महसूल माँगे। इसका प्रभाव यह हुआ कि सारा अन्तर्देशीय व्यापार भी अंग्रेजो के हाथों में चला गया। नवाब की आय को बहुत भारी हानि पहुँची उसने विरोध किया परन्तु व्यर्थ। अन्त को भारतीय व्यापारियों के हितो की रक्षा के विचार से मीरकासिम ने सब महसूल माफ कर दिया। कलकत्ता के अग्रेज व्यापारियों को मीरकासिम की यह बात बहुत बुरी लगी। सन् १७६३ में नवाब के सिपाहियो की अंग्रेज, सिपाहियों से मुठभेड़ हो गई। अब मीरकासिम ने अवध के नवाब शुजा-उद्दौला और शाहजादा अलीगौहर से, जो अब शाह-आलम द्वितीय के नाम से बादशाह बन चुका था सहायता माँगी। वह मुंगेर से मुर्शिदाबाद की ओर बढा परन्तु परास्त हुआ और पटना की ओर भागा। पटना पहुँच कर उसने सब अग्रेजो को जो नगर में थे, मरवा डाला। अब अग्रजी सेना भी पटना की ओर बढी। मीरकासिम को अवध जाकर आश्रय लेना पडा। मीरजाफर को फिर बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया गया। मीरकासिम ने अवध के नवाब शुजा-उद्दौला और सम्राट् शाह-आलम की सेनाओं को लेकर बिहार पर आक्रमण किया। उस समय मेजर मुनरो अग्रेजी सेना का सेनापति

देना स्वीकार किया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी बंगाल और बिहार प्रान्तो की दीवान नियुक्त की गई दीवानी का अधिकार मिलने के पश्चात् अंग्रेज सरकार और नवाब नज्मउद्दौला में एक नई सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार नवाब ने अंग्रेज अधिकारियों को प्रान्तों की मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दिया और इसके बदले में सेना रखने और राज्य का प्रबन्ध करने के लिये उसे ५४ लाख रुपया वार्षिक दिया गया।

लार्ड क्लाइव का शासन-काल

क्योंकि अंग्रेज अधिकारी अभी तक भारतीयों के मालगुजारी के ढग से परिचित न थे, इसलिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने यह निश्चय किया कि भारतीय जमींदारों, राजाओं और नवाबो के द्वारा ही मालगुजारी वसूल की जाती रहा करे। यदि इनमे से कोई मालगुजारी के देने में गडबड करे तो सेना की सहायता ली जाए। इस तरह प्रबन्ध का कुछ काम तो नवाब की सरकार के हाथों में रहा और कुछ अंग्रेजी सरकार के हाथों में आया। यह प्रणाली जो द्वैध शासन (Double government) के नाम से प्रसिद्ध है, सन् १७७२ तक रही। द्वैध-शासन की इस प्रणाली को ठीक कर क्लाइव ने बंगाल मे कम्पनी के मामलो में सुधार की ओर अपना ध्यान फेरा। उसने बंगाल में अंग्रेज व्यापारियों का व्यक्तिगत व्यापार बंद कर दिया और दीवानी की आय में से अढाई प्रति सैकडा कम्पनी के कर्मचारियों मे बांटने के लिये अलग कर दिया। अब क्योंकि बंगाल में बाहर से कोई भय न था इसलिए उसने सैनिको का भत्ता घटा कर दुगुने से एक गुना ही रहने दिया। इससे क्लाइव की सर्वप्रियता जाती रही और उसके कई शत्रु पैदा हो गए। वह सन् १७६७ मे इंगलैंड वापस चला गया। सन् १७७० में बंगाल में अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष पड़ा जिससे प्रान्त की

जन संख्या एक तिहाई ही रह गई। इस अवधि में अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध बहुत से अभियोग लगाये गये। उन्होंने बदले में भारतीय अफसरों पर दोषारोपण किए। अन्त मे इंगलैंड में डायरेक्टरों ने सन् १७७१ में द्वैध शासन प्रणाली को हटा दिया। सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ। लार्ड वेलेजली के समय में सन् १८०५ तक ब्रिटिश राज्य खूब बढ़ गया।

प्रश्न

१. मुर्शिद कुली खां के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

२. अलीवर्दी खां के शासन काल का वर्णन करो।

३. काल-कोठरी वाली परिस्थितियों का वर्णन करो।

४. क्लाइव प्लासी की लड़ाई में सिराज-उद्दौला से क्यों कर सुगमता से जीत सका ?

५ मीरजाफर के शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो और बताओ कि उसे तख्त से क्यों उतारा गया ?

६. भारत के इतिहास में मीरजाफर ने क्या भाग लिया ?

(पं० यू० १९३८)

७. मीरकासिम के शासन प्रबन्ध का हाल लिखो और बताओ कि कलकत्ता के अंग्रेज-अधिकारियों से उसका युद्ध क्यों शुरू हुआ।

८ किन परिस्थितियों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी के अधिकार दिए गए ?

९. क्लाइव के शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो।

१०. प्लासी और लासवाड़ी की लड़ाइयों के साथ किन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध है ? (पं० यू० १९२३ १९२५, १९३३)

११ भारत में राबर्ट क्लाइव के जीवन चरित का वर्णन करो। क्या तुम इस कथन का भाव स्पष्ट कर सकते हो—"क्लाइव का जीवन भारत में अंग्रेज़ों के इतिहास का संक्षेप है।" (पं० यू० १९३५)

हटा दी गई और नवाब को दी जाने वाली ५४ लाख की रकम १८ लाख कर दी गई।

अवध-साम्राज्य तथा अवध और रुहेलों की लड़ाई में अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप

अवध साम्राज्य की नींव निशापुर (खुरासान) के व्यापारी सआदत खां ने डाली थी। वह फर्रुखसियर के समय में मुगलों की नौकरी में प्रविष्ट हुआ था। उसने अपनी योग्यता के कारण शीघ्र ही उच्च स्थिति प्राप्त कर ली। वह आगरा प्रांत में हिंडौन का फौजदार नियुक्त किया गया। सन् १७२० में सैयद भाइयों के प्रभाव को नष्ट करने के लिये जो षड्यन्त्र रचा गया था, सआदत खां ने उसमें गहरा भाग लिया था इसी सेवा के बदले में पहले उसे आगरा का और बाद को सन् १७२२ में अवध का नवाब नियुक्त किया गया था। इसी वर्ष गाजीपुर, जौनपुर, बनारस और चुनार के जिले भी उनके अधिकार में सौंप दिये गये। सआदत खां ने सन् १७२२ से लेकर १७३६ तक शासन किया। इसके बाद उसका पुत्र सफदर जंग नवाब हुआ और उसने सन् १७३६ से लेकर १७५५ तक राज्य किया। सन् १७४३ में उसने गंगा और जमुना के बीच इलाहाबाद का समस्त प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया उसने इस पश्चात् उत्तर में रुहेलों की तरफ जिन्होंने १७२६ में स्वतन्त्र होकर दिल्ली के मुगल प्रांत के पूर्वी भाग पर अधिकार जमा लिया था, अपना ध्यान फेरा। क्योंकि अकेला सफदर जंग रुहेलों को दबा न सका इसलिये सन् १७५१ में उसने मरहठों से सहायता मांगी। रुहेलों पर आक्रमण किया गया और उन्हें विवश कुमाऊं की पहाड़ियों में भाग कर शरण लेना पड़ा। परंतु इसी समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। इसी कारण सफदर जंग ने रुहेलों से ५० लाख रुपया हर्जाना लेकर उनसे संधि कर ली और अपने मरहठे साथियों [illegible]

छठा अध्याय

वारेन हेस्टिंग्ज़ १७७२—१७८६

वारेन हेस्टिंग्ज़ १७७२—१७८६

वारेन हेस्टिंग्ज १७५० में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकर हुआ था और तब से कई कारखानों में काम कर चुका था। वह एक बहुत अनुभवी अफसर था। गवर्नरी का काम सभालते ही उसने सब शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में कर लिया और मुर्शिदाबाद से राजधानी को हटा कर कलकत्ता ले आया। इसी समय के लगभग शाहआलम, जो अंग्रेजों को दीवानी का अधिकार सौंपे जाने के समय से लेकर इलाहाबाद में रह रहा था, मरहटों की सहायता से दिल्ली वापस आया। वारेन हेस्टिंग्ज ने इस बात को पसन्द न किया। इसलिये उसने १७७२ में शाहआलम को २६ लाख रुपया वार्षिक कर देना बन्द कर दिया जिसे कि सन् १७६५ में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कपनी ने देना स्वीकार किया था। इसी समय से यह माना जा सकता है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने बङ्गाल में स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण की। तब उसने मालगुजारी वसूल करने का प्रबन्ध करने के लिये कलकत्ता में एक रेवेन्यू बोर्ड की स्थापना की, दीवानी मामलों को निपटाने के लिए प्रत्येक जिले में एक दीवानी अदालत और फौजदारी मामलो का फैसला करने के लिए फौजदारी अदालतें बनाई गईं। जिलो की अदालतो के फैसले की अपील के लिये उसने कलकत्ता में सदर दीवानी और सदर फौजदारी अदालतें बनाईं। क्योंकि वारेन हेस्टिंग्ज ने प्रबंध सबधी समस्त अधिकार स्वयं ले लिए इसलिये नवाब को अब सेना रखने की कोई आवश्यकता न थी। अतएव नवाब की सेना

हटा दी गई और नवाब को दी जाने वाली ५४ लाख की रकम १८ लाख कर दी गई।

अवध-साम्राज्य तथा अवध और रुहेलों की लड़ाई में अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप

अवध साम्राज्य की नींव निशापुर (खुरासान) के व्यापारी सआदत खां ने डाली थी। वह फर्रुखसियर के समय में मुगलों की नौकरी में प्रविष्ट हुआ था। उसने अपनी योग्यता के कारण शीघ्र ही उच्च स्थिति प्राप्त कर ली। वह आगरा प्रांत में हिंडौन का फौजदार नियुक्त किया गया। सन् १७२० में सैयद भाइयों के प्रभाव को नष्ट करने के लिये जो षड्यन्त्र रचा गया था, सआादत खां ने उसमें गहरा भाग लिया था इसी सेवा के बदले में पहले उसे आगरा का और बाद को सन् १७२२ में अवध का नवाब नियुक्त किया गया था। इसी वर्ष गाजीपुर, जौनपुर, बनारस और चुनार के जिले भी उसके अधिकार में सौंप दिये गये। सआादत खां ने सन् १७२२ से लेकर १७३६ तक शासन किया। इसके बाद उसका पुत्र सफदर जंग नवाब हुआ और उसने सन् १७३६ से लेकर १७५४ तक राज्य किया। सन् १७४३ में उसने गंगा और जमुना के बीच इलाहाबाद का समस्त प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया उसने इस पश्चात् उत्तर में रुहेलों की तरफ जिन्होंने १७२६ में स्वतन्त्र होकर दिल्ली के मुगल प्रांत के पूर्वी भाग पर अधिकार जमा लिया था, अपना ध्यान फेरा। क्योंकि अकेला सफदर जंग रुहेलों को दबा न सका इसलिये सन् १७५१ में उसने मरहठों से सहायता मांगी। रुहेलों पर आक्रमण किया गया और उन्हें विवश कुमाऊं की पहाड़ियों में भाग कर शरण लेना पड़ा। परन्तु इसी समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। इसी कारण सफदर जंग ने रुहेलों से ५० लाख रुपया हर्जाना लेकर उनसे संधि कर ली और अपने मरहटा साथियों सहित [illegible] ने

चला गया अब रुहेलखण्ड पर रुहेला सरदारों का एक संघ शासन करने लगा। इन सरदारों में से नजीब-उद्दौला सब से प्रसिद्ध हुआ है। उसे सन् १७५४ में दिल्ली की मुगल सेनाओं का सेनापति नियुक्त किया गया था। जब सन् १७५४ में सफदरजंग मरा तो उसके बाद उसका बेटा शुजाउद्दौला गद्दी पर बैठा और उसने सन् १७५४ से लेकर १७७५ तक अवध पर राज्य किया। परन्तु सन् १७५७ के शीघ्र पश्चात् सारे उत्तर भारत में मरहठों का प्रभुत्व हो गया। रुहेला सरदार नजीबउद्दौला और अवध के नवाब शुजाउद्दौला दोनों इस बात से बड़े भयभीत हो गये। उन्होंने पुनः अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। हम पहले ही यह बता चुके हैं कि इन दोनों की सहायता से सन् १७६१ में अहमदशाह अब्दाली ने मरहठों को हराया। इसके बाद नजीबउद्दौला को दिल्ली का सेनापति बना दिया गया। जब सन् १७७१ में उसकी मृत्यु हो गई और बादशाह शाहआलम ने मरहठो की सहायता से पुनः दिल्ली पर अधिकार कर लिया, तब मरहठो को यह अवसर मिला कि वे पानीपत की लड़ाई में भाग लेने के लिये रुहेलो को दण्ड दे सकें। सन् १७७३ मे मरहठों ने रुहेलों पर चढ़ाई कर दी। रुहेलों ने इस पर अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता मांगी। नवाब ने इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि ४० लाख रुपया उसे दिये जाएँ। रुहेलो ने इस शर्त को मान लिया। परन्तु इन्हीं दिनों पेशवा माधवराव के मर जाने पर दक्षिण में गम्भीर स्थिति हो गई थी और मरहठों को उत्तर-भारत से लौटना पड़ा। उत्तर-भारत से मरहठों के चले जाने के पश्चात् नवाब ने रुहेलों से ४० लाख रुपया मांगा। उन्होंने देने से इनकार कर दिया। इस पर नवाब ने रुहेलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और बंगाल के अंग्रेज अधिकारियों से सहायता मांगी। वारेन हेस्टिंग्ज को पहले ही यह भय

लग रहा था कि मरहटा रुहेलखण्ड का सत्यानाश कर फिर अवध की भी खबर लेंगे। अत. मरहठो की इस शक्ति की वृद्धि को रोकने के लिये एक ही उपाय था। रुहेलखण्ड को जीतने के लिये अवध की सहायता की जाये। वारेन हेस्टिंग्ज ने रुहेलखण्ड के विरुद्ध अंग्रेजी सेना को भेजना स्वीकार कर लिया और नवाब ने यह वचन दिया कि उसे जो ४० लाख रुपया रुहेलो से मिलेगा वह अंग्रेजो को दे दिया जाएगा। रुहेले परास्त हुये और सन् १७७४ मे रुहेलखण्ड अवध में मिला लिया गया। केवल एक रुहेला सरदार के पास रामपुर की रियासत रहने दी गई। उसके वंशज आज तक रामपुर रियासत मे शासन करते हैं। सन् १७७५ में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई और गद्दी उसके पुत्र आसफउद्दौला को मिली। उसने सन् १७७५ से लेकर १७९७ तक राज्य किया। सन् १७७५ में ब्रिटिश सरकार और नवाब अवध मे एक नई सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार बनारस का इलाका राजा चेतसिंह को दे दिया गया और उसने अंग्रेजी सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट सन् १७७३

हम पहले देख ही चुके हैं कि सन् १७७० में बंगाल में एक महा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, और सन् १७७१ में डायरेक्टरो के बोर्ड ने यह निश्चय किया कि बंगाल और बिहार में मालगुजारी की वसूली स्वय कराई जाए। सन् १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने बंगाल की आय में से शाहआलम को २६ लाख की रकम देना बंद कर ब्रिटिश गवर्नमेंट को दिल्ली के मुगल अधिकारियो से बिलकुल स्वतन्त्र बना लिया। यद्यपि भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की समृद्धि ऊपर से बढ़ती हुई प्रतीत होती थी, परन्तु इंगलैंड में उस पर तीव्रगति से ऋण चढ़ रहा था। इसलिये ब्रिटिश पार्लियामेंट ने यह आवश्यक समझा कि भारत में कम्पनी के

मामलो पर उचित नियन्त्रण रखने के लिए एक कानून पास किया जाए। अतः सन् १७७३ में रेगुलेटिंग एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार कलकत्ता, मदरास और बम्बई की प्रेज़ीडेंसी कौंसिलें तोड़ दी गईं और उनके स्थानों में छोटी-छोटी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिलें बनाई गईं जिनके सदस्यों की संख्या केवल ४ नियत की गई। यह भी निर्णय हुआ कि आगे से प्रान्तों के गवर्नरों और उनकी कौंसिलों के सदस्यों की नियुक्ति इङ्गलैंड की सरकार की अनुमति से की जाया करेगी। बिहार और बंगाल पूर्ण रूप से ब्रिटिश शासन के अधीन आ चुके थे, इसलिए इन दोनों प्रान्तों का सारा प्रबन्ध बंगाल के गवर्नर-इन-कौंसिल के अधीन कर दिया गया। बङ्गाल सरकार को यह अधिकार भी दिया गया कि वह बम्बई और मदरास के छोटे छोटे प्रान्तों के वैदेशिक और सैनिक मामलों की देख-रेख रक्खे। रेगुलेटिंग एक्ट के अधीन कलकत्ता में एक सुप्रीम-कोर्ट (उच्च अदालत) भी स्थापित की गई, जिसके जजों की नियुक्ति इङ्गलैंड के सम्राट् स्वयं करते थे। इस अदालत को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ता नगर के सब मामलों और कलकत्ता से बाहर प्रान्त भर के ऐसे मामलो को जो यूरोपियन और भारतीयों के बीच हों फैसला करे। रेग्यूलेटिंग एक्ट अक्तूबर सन् १७७४ से लागू हुआ।

वारेन हेस्टिंग्ज़ की लड़ाइयाँ

जब सन् १७७४ में मदरास और बम्बई के छोटे छोटे प्रान्तो के वैदेशिक और सैनिक मामलो पर बंगाल सरकार का नियन्त्रण हो गया तब वारेन हेस्टिंग्ज ने सन् १७७८ में बंगाल से कुछ अंग्रेज़ी सेना महरठों के विरुद्ध भेजी। (देखो पृष्ठ २६—३१) सन् १७८२ में सलबाई की सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने, अवध के पश्चिम समस्त उत्तर-भारत को माधव राव सिन्धिया के प्रभाव के अधीन मान लिया।

इस युद्ध मे, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, मैसूर का हैदरअली महरठों का साथी था। इसलिये पहले मरहठा-युद्ध के साथ दूसरा मैसूर-युद्ध भी लड़ा गया। सन् १७८२ में मरहठों से और सन् १७८४ में मैसूर से संधि हो गई। (देखो पृष्ठ ४६—४७) मैसूर से संधि मंगलोर पर हुई थी। इस संधि के अनुसार जीते हुए प्रदेश और बन्दी लौटा दिये गये।

वारेन हेस्टिंग्ज़ की आर्थिक कठिनाइयाँ

वारेन हेस्टिंग्ज को बङ्गाल के साधारण सिविल और फौजी खर्च ही नही चलाने थे बल्कि मैसूर और मरहठो के विरुद्ध लड़ाइयो के लिये भी उसे धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। इधर इङ्गलैड की ब्रिटिश सरकार अमरीकन-स्वातन्त्र्य संग्राम मे लिप्त थी और अमरीका के उपनिवेशों तथा उनके मित्रों फ्रांसीसी और स्पेन वालों से युद्ध कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों मे वारेन हेस्टिंग्ज को इङ्गलैंड से धन की कुछ भी सहायता न मिल सकती थी। इसलिये उसे भारत से ही धन वसूल करने के उपाय करने पड़े। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि बनारस का राजा चेतसिंह ने सन् १७७५ मे ब्रिटिश सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। उसने ब्रिटिश सरकार को २० लाख वार्षिक देना स्वीकार किया था। महरठों से युद्ध छिड़ने पर वारेन हेस्टिंग्ज को एक-आध साल तक राजा चेतसिंह से ५ लाख रुपया वार्षिक और अधिक मिल गया था परन्तु इसके बाद उसने अधिक रकम देने से इनकार कर दिया। इस अपराध के लिये राजा चेतसिंह पर ५० लाख रुपया जुर्माना किया गया। जब राजा ने जुर्माना देने से इनकार कर दिया तो सेना भेजी गई। उसे गद्दी से उतार दिया गया और उसके भतीजे को इस शर्त पर बनारस का राजा स्वीकार किया गया कि वह ब्रिटिश सरकार को ४० लाख रुपया वार्षिक दे। जब वारेन हेस्टिंग्ज को विदित हुआ कि बनारस से उसे बहुत

७. नन्दकुमार पर नोट लिखो। (पं० यू० १६२८)

८. वारेन हेस्टिंगज की आर्थिक कठिनाइयो पर एक नोट लिखो और बताओ कि उसने किन उपायो से धन प्राप्त किया? (पं०यू० १६३२)

६. भारत मे ब्रिटिश शक्ति स्थापित करने में वारेन हेस्टिंग्ज़ का कहाँ तक हाथ है? (प० यू० १६२०)

सातवाँ अध्याय

लार्ड कार्नवालिस १७८६-१७९३, सर जान शोर १७९३-१७९८ और लार्ड वेलेज़ली १७९८-१८०५

लार्ड कार्नवालिस १७८६-१७९३

अपने समय में ही वारेन हेस्टिंगज को सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट में कई दोष मालूम पड गये थे। एग्ज़ेक्टिव कौन्सिल में समस्त मामले बहुमत से पास होते थे, इसलिए बहुत से अवसरों पर गवर्नर जनरल का अल्प मत हो जाता था। ऐसी परिस्थितियों में उसे एक ऐसी नीति का पालन करना पडता था जिसे वह स्वयं नहीं चाहता था। इसी कारण वारेन हेस्टिंगज को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पडा। उसके उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस ने जब वह इंगलैंड में ही था, इस बात पर जोर दिया कि विशेष परिस्थितियों में गवर्नर जनरल एग्जेक्टिव कौंसिल के निर्णय को अस्वीकार कर का अधिकार दिया जाय। फिर वारेन हेस्टिंगज के युद्धों में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी पर बहुत सा ऋण हो गया था और यह उचित समझा गया कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारों को कम किया जाय। अतः सन् १७८४ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया जो कि "पिट्स इण्डिया एक्ट" के नाम से प्रसिद्ध है। इस कानून द्वारा भारत के अंग्रेज़ी प्रदेशों को एक 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' (Bord of control) के अधीन कर दिया गया। इस बोर्ड के सदस्यों की नियुक्ति

इंगलैण्ड की सरकार करती थी। इंगलैंड का प्रधान मन्त्री इसी बोर्ड के एक सदस्य को बोर्ड का प्रधान नियुक्त करता था। इस कानून के पास हो जाने से इंगलैंड का कोर्ट आव डायरेक्टर्स (Court of Directors) अथवा भारत के अंग्रेज अधिकारी बिना ब्रिटिश पार्लियामेंट की स्वीकृति के युद्ध या सन्धि नहीं कर सकते थे। इस कानून के द्वारा भारत के सप्रीम कोर्ट (उच्च अदालत) के अधिकार भी और अधिक निश्चित कर दिए गए।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा सिविल सर्विस का सुधार

लार्ड कार्नवालिस ने अधिकार सम्पन्न होने पर सबसे पहला काम यह किया कि उसने भारत में सिविल सर्विसों को नए क्रम से रखा। पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन दिया जाता था। परन्तु क्योंकि उन्हें व्यक्तिगत व्यापार करने की इजाजत थी, इसलिए वे बहुत लाभ बना लेते थे। सन् १७६६ में लार्ड क्लाइव ने कम्पनी के कर्मचारियों को व्यक्तिगत व्यापार करने से मना कर दिया और, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, उसने उनकी हानि की पूर्ति करने के लिए दीवानी आय में से अढ़ाई प्रति सैकड़ा अलग कर दिया। परन्तु इन उपायों से भी व्यक्तिगत व्यापार बन्द नहीं हुआ। अब कम्पनी के व्यापारियों ने अपने मारवाड़ी गुमाश्तों के नाम पर व्यापार करना शुरू कर दिया। जब सन् १७७२ में मुगल साम्राज्य के स्थान पर बंगाल और बिहार में स्वतन्त्र अंग्रेजी राज्य स्थापित हो गया तो सरकारी कर्मचारियों को आय का कुछ प्रतिशत देने का नियम अनुचित समझा गया। लार्ड कार्नवालिस ने इस प्रणाली को उड़ा दिया और निश्चित वेतन की प्रणाली जारी की। परन्तु क्योंकि प्रतिशत कमीशन के कारण सरकारी कर्मचारियों को बहुत कुछ मिल जाता था, इसलिये उनके वेतन भी बहुत अधिक निश्चित करने पड़े।

इतनी रक़म सरकार को देगा। जब सन् १७६५ में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी का अधिकार मिला तो उन्होंने भी यही लगान की प्रणाली जारी रखी। परंतु लगान का हर वर्ष निश्चित करने का काम सरकार और किसान दोनों के लिए बड़ा बुरा था जब सन् १७७२ में वारेन हेस्टिग्ज ने शासन-भार लिया तब उसने एक वर्ष के स्थान पर पाँच वर्ष के लिए जुताई के पट्टे जारी किए। परन्तु इस समय लोगों न लगान की रक़म को इतना चढ़ा दिया कि बहुत कम किसान निश्चित रक़म दे सकते थे अन्त में सन् १७७७ में फिर वार्षिक लगान निश्चित करने की प्रथा जारी की गई। परंतु इस प्रथा को इंगलैंड के अधिकारियों ने पसन्द नहीं किया। इसलिए जब लार्ड कार्नवालिस को बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया उस समय उसे विशेष आदेश दिया गया कि वह भारत में भूमिकर स्थायी रूप से निश्चित कर दे। पिछले कई वर्षों के लगान की जाँच की गई और उसी के औसत पर एक वार्षिक रकम निश्चित की गई। अन्त में सन् १७८६ में पिछले दस वर्षों की सख्या की औसत लगान के रूप में निश्चित की गई सन् १७६३ यही वार्षिक कर निश्चित कर दिया गया। इस रक़म की वसूली का प्रबन्ध उन लोगों के साथ किया गया कि जो मुगल शासन में मालगुजारी वसूल करते थे। ब्रिटिश सरकार ने अब उन्हें भूमि का स्वामी स्वीकार किया और वास्तविक मालिक केवल किसान (जुताई करने वाले) बना दिए गये। इससे सरकार को एक लाभ यह हुआ कि अब उन्हे एक निश्चित रक़म मिलने का विश्वास हो गया और जमीदारों को यह लाभ हुआ कि उनकी यह चिन्ता दूर हो गई कि कहीं आगे लगान बढ़ा न दिया जाय।

लार्ड कार्नवालिस के समय में केवल मैसूर की तीसरी लड़ाई हुई। हम

स्तान के बादशाह शाहजमान से सहायता मांगी। सन् १७९६ में शाह-जमान ने पंजाब पर आक्रमण किया और लाहौर पर अधिकार कर लिया परंतु इसे शीघ्र ही वापिस लौट जाना पड़ा क्योंकि फारस के बादशाह ने अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई कर दी थी।

लार्ड वेलेजली १७९८–१८०५

मार्कस आव वेलेज़ली १७९८—१८०५

जब मार्कस आव वेलेजली को बङ्गाल का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया उस समय इंगलैंड का क्रान्तिकारी फ्रांस से युद्ध हो रहा था। फ्रांसीसी सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट ने स्थल-मार्ग द्वारा भारतवर्ष पर चढ़ाई करने के विचार से मिश्र पर आक्रमण कर दिया था।

लार्ड वेलेजली

ब्रिटिश सरकार को यह पता था कि टीपू सुलतान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जुटाव कर रहा है और इसी उद्देश से हैदराबाद के निजामअली, अवध के नवाब वजीरअली, काबुल के बादशाह शाहजमा और मिश्र में नेपोलियन बोनापार्ट से पत्र-व्यवहार कर रहा है। यह भी मालूम हुआ कि मैसूर, हैदराबाद और महाराष्ट्र में बहुत से फ्राँसीसी सैनिक नौकर हैं। इन परिस्थितियों में लार्ड वेलेजली ने यह निश्चय किया कि फ्रांसीसियों को भारत से बिलकुल निकाल दिया जाए और भारत के देशी राज्यों और नवाबों को ब्रिटिश सरकार की संरक्षता में केवल अधीन राज्य बना दिया जाय।

सहायक-व्यवस्था

सब से पहले लार्ड वेलेजली निजाम हैदराबाद के पास पहुँचा। सन् १७९५ की खुरदा की पराजय से निजामअली की शक्ति बहुत दुर्बल हो गई थी। लार्ड वेलेजली ने उस के समक्ष एक सहायक सन्धि पेश की। इस सन्धि के द्वारा निजाम हैदराबाद से कहा गया कि वह अपने राज्य में राज्य की रक्षा के लिए ६००० अंग्रेजी सैनिक रखे और उनका खर्च स्वयं दे। निजामअली ने इसे स्वीकार किया और सब फ्रांसीसियों को अपनी नौकरी से निकालने पर सहमत हो गया। उसने वचन दिया कि वह आगे से किसी भी विदेशी को ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति के बिना नौकर न रखेगा। यदि भारत के किसी और राज्य से उसका झगड़ा हो जाय तो इसको निपटाने के लिए वह ब्रिटिश सरकार को पंच नियुक्त करेगा। इस सन्धि पर सन् १७९८ में हस्ताक्षर होगए और हैदराबाद ब्रिटिश सरकार का संरक्षित राज्य बन गया। समस्त फ्रांसीसी सैनिकों को हैदराबाद से निकाल दिया गया। हैदराबाद से निपट कर लार्ड वेलेजली ने टीपू सुलतान से इसी प्रकार की सहायक सन्धि करनी चाही, परन्तु टीपू सुलतान ने साफ इनकार कर दिया। इस पर वेलेजली ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जैसा कि हम बता चुके हैं (देखो पृष्ठ ३८), सन् १७९९ में मैसूर की चौथी लड़ाई हुई। टीपू सुलतान की हार हुई और वह युद्ध में मारा गया। उसका राज्य प्राचीन हिन्दू वंश के प्रतिनिधि कृष्णराज को सौंप दिया गया। मैसूर राज्य ने ब्रिटिश सरकार की अधीनता में रहना स्वीकार किया। इसके पश्चात् सन् १८०१ में वेलेजली ने अवध के नवाब सआदतअली खाँ पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह सहायक सन्धि को स्वीकार करे, लखनऊ में अंग्रेजी सेना रखे और इस सेना के खर्च के लिए गोरखपुर, इलाहाबाद और रुहेलखंड के इलाके ब्रिटिश सरकार को दे दे।

उसी वर्ष अर्काट भी ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया और नवाब मुहम्मद अली के उत्तराधिकारी के परिवार को पेंशन दे दी गई। जब सन् १८१२ में तजौर का मरहठा राजा निस्सन्तान मर गया तो यह राज्य भी अँग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया। अर्काट, तजोर और मैसूर के जीते हुए प्रदेश इन सब को मिला कर मदरास प्रान्त की स्थापना की गई।

मदरास प्रान्त

इस प्रकार दक्षिण और उत्तर में अपनी स्थिति को दृढ़ कर अब वेलेजली ने मरहठों की ओर अपना ध्यान किया। हम यह पहले बता चुके हैं (देखो पृष्ठ ३८-४१) कि बाजीराव दूसरे ने सन् १८०२ में सहायक बनना स्वीकार कर लिया था। इसी से अग्रेज और मरहठों की दूसरी और तीसरी लड़ाई का आरम्भ हुआ था और उसके परिणामरूप पाँचों मरहठा राज्य—नागपुर का भोंसला, गवालिय का सिन्धिया, इन्दौर का होल्कर, बड़ोदा का गायकवाड़ और पूना का पेशवा—ब्रिटिश सरकार के आधिपत्य में हो गए।

वेलेजली और मरहठे

उड़ीसा आगरा, मेरठ तथा दिल्ली के प्रान्त ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गए। अब ब्रिटिश शक्ति भारत में प्रधान शक्ति हो गई और बादशाह शाह आलम भी ब्रिटिश सरकार का पेनशनिया बन गया। इस प्रकार लार्ड वेलेजली ने अप शासन-काल भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता स्थापित की। केवल पंजाब, का मीर, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त काबुल, बलोचि तान सिंध और राजपूताना ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर मुगल राज्य में सम्मिलित रहे। परन्तु भारत में ब्रिटिश राज्य के इस आकस्मिक विस्तार से इंगलैण्ड मे डायरेक्टरों का कोर्ट इतना भयभीत हो गया कि सन् १८०५ में उन्होने लार्ड वलेजली को वापस बुला लिया और लार्ड कार्नवालिस को दुबारा भारत भेजा।

ब्रिटिश राज्य की वृद्धि

आठवाँ अध्याय

उत्तर-पश्चिमी भारत १७१९—१८०५

सन १७२३ में सआदत खाँ ने रियासत अवध की नींव रखी थी।

रियासत अवध का सूत्रपात

सआदत खाँ, वास्तव में खुरासान का रहने वाला नेशापुर का एक व्यापारी था। उसका वास्तविक नाम मुहम्मद अमीन था। सम्राट् फर्रुखसियर के समय में वह सम्राट् के खास सवारों में नौकर हुआ और उसे एक हजारी का पद दिया गया था। अपनी वैयक्तिक बुद्धि और बल के कारण वह शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा और आगरा प्रान्त के इलाके में हिंदुओं का सेनापति नियुक्त किया गया। सैयद भाइयों के विरुद्ध षड्यन्त्र में वह भी सम्मिलित था। जब सन् १७२० में इस षड्यन्त्र से सैयद हुसन खाँ को मार दिया गया और सैयद अब्दुल्लाह हार कर बन्दी हुआ तो इन सेवाओं के बदले में उसे आगरा की सूबेदारी दी गई। परन्तु सन् १७२३ में उसको अवध मिल गया और आगरा प्रान्त उससे ले लिया गया। उसी वर्ष सम्राट् ने इलाहाबाद प्रान्त में गाजीपुर, जौनपुर, बनारस और चुनार के इलाके भी उसके अधिकार में दे दिए। सआदत खाँ ने अवध पर सन् १७२३ से १७३६ तक राज्य किया और इस काल में वह अधिकतर अपने इलाके में ही शान्ति स्थापित करने में लगा रहा। परन्तु जब सन् १७२६ में बुन्देले स्वतन्त्र हो गए और इसके बाद मरहठों ने भी इलाहाबाद प्रान्त और आगरा के दक्षिणी भागों में लूट-मार मचानी आरम्भ कर दी और मन्त्री कमरुद्दीन, अमीर खान दौरान और अन्य शाही पदाधिकारी उनका सामना न कर सके तो उस समय सआदत खाँ ने लिखा हुआ कि मरहठे कहीं अवध और

इलाहाबाद पर भी हाथ साफ न कर दें। इसलिए सन् १७३७ मे वह गगा को पार करके मरहठो का सामना करने को बढा और, जैसा हम पहले वर्णन कर आए हैं, उसने कालपी पर मल्हार राव होल्कर को बुरी तरह परास्त किया। जब सन् १७३६ मे सआदत खां की मृत्यु हुई तो उसके स्थान पर उसका पुत्र सफदर जग अवध का नवाब माना गया। सफदर जग ने सन् १७३६ से १७५४ तक राज्य किया। उसके समय इलाहाबाद का इलाका सन् १७३५ में और फर्रुखाबाद रियासत का आधा भाग सन् १७५१ में रियासत अवध में सम्मिलित हुआ। सफदर जग की मृत्यु पर उसका लडका नवाबशुजा-उद्दौला अवध की गद्दी पर बैठा। सन् १७६१ मे अहमदशाह अब्दाली ने शुजा-उद्दौला को दिल्ली साम्राज्य का मन्त्री बना दिया और रुहेला सरदार नजीब उद्दौला को सेनापति नियुक्त किया।

इलाहाबाद प्रान्त

उस समय इलाहाबाद प्रान्त चार बडे-बडे भागो मे विभक्त था— बनारस, इलाहाबाद, बुन्देलखण्ड, और बघेलखड। बनारस तो सन् १७२३ मे सआदत खां को मिल गया। इस प्रान्त मे इलाहाबाद का इलाका मुहम्मदख बगश के आधीन था, परतु उसमे से जमुना के किनारे तक का दक्षिण भाग शीघ्र ही बुन्देलो ने जीत लिया था। मुहम्मद खां बगश सन् १७२ मे बुन्देलो का दमन करने के लिये अपनी सेना लेकर बढा परंतु दूस और मरहठो ने गवालियर पर आक्रमण कर दिया और मुहम्मद बगश को उनके मुकाबले मे वहा जाना पड़ा। सन् १७२७ में मुहम्म खां बगश ने फिर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। थोडे समय ह उसने समस्त बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार जमा लिया. परतु अ राजा छत्रसाल ने बाजीराव को अपनी सहायता के लिये बुलाया। मुहम्मद खां बगश हार गया और उसने बड़ी कठिनाई से

असफल होकर वापस लौटना पडा । सन् १७३९ मे नादिरशाह के आक्रमण के बाद मुहम्मद खां बंगश भी स्वतन्त्र हो गया और उसने अलीगढ के पास सिकन्दरा पर शाही सेना को बुरी तरह पराजित किया। सन् १७५१ मे अवध के नवाब सफदर जग ने मरहठों की सहायता से फार्रुखाबाद के बंगश पठान अहमद खा पर चढाई कर दी । इस युद्ध मे आक्रमणकारियों की जीत हुई और रियासत दो भागों में बट गई । एक भाग तो अवध की रियासत मे सम्मिलित हुआ और दूसरा मरहठो के हाथ आया। परन्तु सन् १७६१ की लडाई के पश्चात् अहमदशाह बंगश ने यह आधा भाग भी मरहठो से छीन लिया।

उस समय दिल्ली प्रान्त में रुहेलखण्ड मेरठ और अम्बाला की तीनो वर्तमान कमिश्नरियां शामिल थी। सतलुज नदी इस प्रान्त की उत्तरीय सीमा थी। दिल्ली प्रान्त का उत्तरीय भाग, जिसमें आजकल फुल्कियां, अम्बाला लुधियाना और फीरोजपुर के जिले सम्मिलित हैं, उन दिनो फौजदारी सरहन्द का इलाका कहाता था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् सन् १७०९ में सिक्खों ने इस इलाके में विद्रोह मचाना आरम्भ कर दिया। सरहन्द के फौजदार की हत्या कर दी गई और नगर लूट कर नष्ट कर दिया गया । इस विद्रोह को समाप्त करने के लिए सम्राट् बहादुरशाह उत्तर की ओर बढा और अभी यह विद्रोह समाप्त न हो पाया था कि सम्राट् का देहान्त हो गया। फर्रुखसियर के समय में सिक्खो ने सरहन्द पर फिर आक्रमण किया और इस बार फिर सरहन्द का फौजदार मार दिया गया।

दिल्ली प्रान्त

दिल्ली प्रान्त का पूर्वीय भाग, जिसको आजकल रुहेलखण्ड कहते हैं, उन दिनो कटहर के नाम से प्रसिद्ध था। सम्राट जहांदरशाह के समय में एक पठान, जिसका नाम दाऊद खां था, तिराह के पहाडी इलाके से आकर कटहर म

रुहेले

रहने लगा। थोड़े समय ही में उसने अपनी वीरता और बहादुरी से प्रसिद्धि प्राप्त कर ली क्योंकि वहाँ के जमींदारों की लड़ाइयों में वह जिसको भी सहायता करता उसी की विजय होती। एक बार उसको अहीरों का ६ वर्ष का अनाथ लड़का मिल गया। उसने उसे गोद ले लिया और उसका नाम अलीमुहम्मद खां रखा। जब दाऊद खां मर गया तो अली मुहम्मद खां रुहेलों का सरदार बना। उसने भी दाऊद खां की भाँति कटहर में बराबर लूट-मार जारी रखी। सन् १७३६ में उसने बदायूँ और बरेली के कुछ इलाकों पर अधिकार जमा लिया। सन् १७३७ में कटहर का अधिकांश भाग उसे मिल गया और वह वहाँ का नवाब बन गया।

फर्रुखसियर की हत्या के पश्चात् मुगलों के प्रभुत्व का सूर्य वैसे ही प्राय: अस्त हो चुका था परन्तु नादिरशाह के आक्रमण ने तो इस विशाल साम्राज्य की रही सही शक्ति का भी ह्रास कर दिया। यहाँ तक कि सम्राट् का दबाव अब दिल्ली और आगरा में भी जाता रहा। अब तो दिल्ली दरबार उच्चाधिकारियों की स्वार्थप्रियता के लिए आखेट भूमि बन गया था। नादिरशाह के जाने के बाद निज़ाम-उल-मुल्क सब से शक्तिशाली था परन्तु जब सन् १७४१ में उसके पुत्र नासिर जंग ने विद्रोह का झंडा उठाया तो उसने एक तूरानी अमीर कमरुद्दीन को मन्त्री नियुक्त किया और साथ अपने बेटे गाज़ी-उद्दीन, जो कमरुद्दीन का दामाद भी था, सेनापति बना कर दक्षिण की ओर चल पड़ा। निज़ाम-उल-मुल्क के जाते ही रुहेलों ने रुहेलखण्ड में शाही फौजदार को परास्त करके रुहेलखण्ड पर अधिकार जमा लिया। रुहेलों की इस विजय से अवध के सूबेदार सफदरजंग के मन खट्टे हो गये। उसने दिल्ली सम्राट् को सूचित किया और उससे परामर्श करके सम्राट् महम्मदशाह ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। सन् १७४५ में रुहेला सरदार पराजित हुआ और वह बन्दी करके दिल्ली लाया गया। वहाँ जाकर वह सरहिन्द का फौजदार नियुक्त किया गया। सरहिन्द में वह सिक्खों के दमन में लगा रहा परंतु जब सन् १७४८ में अहमद

शाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया तो अलीमुहम्मद रुहेलखण्ड वापस लौटा और थोड़े समय ही में उसने समस्त रुहेलखण्ड को फिर जीत कर अपने अधिकार मे कर लिया। इसके कुछ ही महीनो बाद अली-मुहम्मद की मृत्यु हो गई। उस समय उसके दो पुत्र अब्दुल्ला खां और फैजअल्ला खां अहमदशाह अब्दाली के पास कन्धार मे थे। शेष चार लड़के अल्प-वयस्क थे। इसलिए रियासत के प्रबन्ध के लिये उसने ११ सरदारो की एक पंचायत बना दी। हाफिज़ रहमत-उल्लाह इस पंचायत का प्रधान चुना गया और डोंडे खां रियासत का सेनापति बना। जब अली मुहम्मद खां मर गया तो सफदर जंग ने सोचा कि रुहेल-खण्ड पर आक्रमण करने का यह बहुत ही अच्छा अवसर है। अतएव सफदर जंग ने मरहठो से सहायता मांगी। मरहठो ने सहायता देना स्वीकार कर लिया और सफदर जंग तथा मरहठो की सम्मिलित सेनाओं ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया और उनकी राजधानी आंवला पर अधिकार जमा लिया। मरहठो ने अब समस्त रुहेलखण्ड मे लूटमार मचानी आरम्भ कर दी और रुहेलो को कुमाऊं की पहाड़ियो मे छिपना पड़ा। इन्हीं दिनो मे अहमदशाह अब्दाली ने हिन्दुस्तान पर तीसरा आक्रमण किया था। इसलिए सफदर जंग ने रुहेलों से पचास लाख रुपया हर्जाना लेकर सन्धि कर ली और मरहठो को साथ लेकर अहमदशाह अब्दाली का सामना करने के लिये बढ़ा। परन्तु उसके दिल्ली पहुंचने से पहले ही सम्राट् ने अब्दाली को लाहौर और [illegible] के प्रान्त देकर सन्धि कर ली थी।

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

जब सन् १७४८ में अहमदशाह अब्दाली ने [illegible] पर [illegible] किया तो [illegible] मे [illegible]। [illegible] युद्ध के कुछ [illegible] दिन बाद सम्राट् मुहम्मद [illegible] का भी देहान्त होगया और [illegible] गद्दी पर बैठा। [illegible]

सफदर जंग को मन्त्री नियुक्त किया और निजाम-उल-मुल्क के बड़े लड़के गाजी-उद्दीन को सेनापति बनाया। सन् १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तीसरी बार आक्रमण कर दिया। मन्त्री सफदर जंग उस समय मरहठों की सहायता से रुहेलों और फर्रुखाबाद के बंगश पठानों के दमन करने में व्यस्त था। दिल्ली में सेना का सर्वथा अभाव था इसलिये सम्राट् अहमदशाह ने लाहौर और मुलतान के सूबे अहमदशाह अब्दाली को देकर उससे सन्धि कर ली। जब सफदर जंग मरहठों को साथ लेकर दिल्ली पहुँचा तो अहमदशाह अब्दाली जा चुका था।

दक्षिण में निजाम-उल-मुल्क सन् १७४७ में मर चुका था और उसके लड़कों में गद्दी के लिये झगड़ा हो रहा था। उस समय गाजी-उद्दीन ने भी यही सोचा कि सफदर जंग के सहायक मरहठों को साथ लेकर दक्षिण की गद्दी लेनी चाहिये। सफदर जंग हृदय से प्रसन्न था क्योंकि वह चाहता था कि गाजी उद्दीन किसी प्रकार दिल्ली से दूर हो जाये तो अच्छा हो। अतएव गाजी-उद्दीन मरहठा सेना लेकर दक्षिण की ओर चल पड़ा और अपने स्थान पर अपने पुत्र शहाब उद्दीन को सेनापति बना गया। अब दिल्ली में शहाब-उद्दीन और सफदर जंग में व्यक्त रूप से शत्रुता होने लगी। प्रतिदिन दोनों के सिपाही दिल्ली के बाजारों में आपस में भिड़ जाते। अन्त को मरहठों की सहायता से शहाब-उद्दीन ने सफदर जंग का दम नाक में कर दिया और उसे ऐसा तंग किया कि उसने मंत्री-पद से त्यागपत्र दे दिया। सफदर जंग से निपट कर शहाब-उद्दीन ने भरतपुर के जाटों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी परन्तु सम्राट् अहमदशाह शहाब-उद्दीन से तंग था। उसने भरतपुर के जाट राजा सूरजमल को लिखा—'घबराओ नहीं, मैं तुम्हारी सहायता पर हूँ।' यह चिट्ठी शहाब उद्दीन के हाथ आगई। वह तत्काल दिल्ली वापस आया और उसने सम्राट् को बन्दी करके उस की हत्या कर दी। सन् १७५४ में शहाब-उद्दीन ने जहाँदारशाह के पुत्र

आलमगीर द्वितीय को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया, नजीब-उद्दौला को, जो रुहेलो का सेनापति था, अपना सेना-नायक नियुक्त किया और स्वय मन्त्री बन बैठा।

इन्हीं दिनों मे सफदर जग का देहान्त हो गया और उसका लडका शुजा-उद्दौला अवध की गद्दी पर बैठा। अब शहाब-उद्दीन के लिये मैदान साफ था। न तो उसको अवध के सूबेदार से डर था और न जाटो का खटका था। इसलिये इधर से निश्चिन्त होकर उसने लाहौर और मुलतान के सूबों को फिर दिल्ली साम्राज्य मे मिलाने का निश्चय किया। शहाब-उद्दीन ने समझा कि पञ्जाब सुगमता से जीता जा सकेगा। वह सेना लेकर पञ्जाब की ओर बढ़ा। लाहौर पर अधिकार जमा कर वह दिल्ली को वापस लौटा और जाते जाते जालन्धर के फौजदार को पञ्जाब का सूबेदार बना गया परन्तु जब इन घटनाओं की सूचना अहमदशाह अब्दाली को मिली तो वह सन् १७५६ मे चौथी बार सेना लेकर लडने के लिये बढ़ा। परन्तु युद्ध आरम्भ होते ही नजीब-उद्दौला, जिसकी साठगांठ पहले ही अहमद शाह अब्दाली के साथ थी अपनी सेना लेकर उसके साथ जा मिला और शहाब-उद्दीन को विवश होकर भागना पड़ा। उसने अहमदशाह अब्दाली से अपने अपराध के लिये क्षमा मांगी और बड़ी कठिनाई से उसे क्षमा मिली। तब अहमदशाह अब्दाली ने स्वय ता दिल्ली पर हाथ साफ किया और अपने एक सेनापति को मथुरा और आगरा को लूटने के लिये भेज दिया। वापस जाते समय उसने नजीब-उद्दौला को सेनापति बनाकर दिल्ली का प्रबन्ध उसे सौंपा और सरहिन्द का इलाका अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु अभी उसने पीठ मोडी ही थी कि शहाब-उद्दीन ने दिल्ली मे वापस आकर नजीब उद्दौला को वहा से निकाल दिया और फर्रुखाबाद के नवाब अहमद खा बगश को अपना सेनापति नियुक्त किया। परन्तु अब शहाब-उद्दीन में इतनी शक्ति न रही थी कि वह अकेला नजीब-उद्दौला और उसके

रुहेला सरदारो का सामना करता। इसलिये उसने मरहठो से सहायता माँगी। बालाजी बाजी राव का भाई रघुनाथ राव पेशवा, जो उस समय गवालियर मे था, शहाब-उद्दीन की सहायता को आया।

पानीपत की लडाई

पिछली बार जाते समय सन् १७५७ में अहमदशाह अब्दाली अपने लडके तैमूर शाह को पञ्जाब का सूबेदार बना गया था। जालन्धर के फौजदार अदीना बेग ने, जो तैमूर शाह के विरुद्ध था, मरहठो को पजाब में बुला लिया। अतएव रघुनाथ राव ने सन् १७५८ मे तैमूर शाह को पजाब से निकाल कर अदीना बेग को अपनी ओर से लाहौर का सूबेदार बना दिया और शक्ति स्थापित रखने के लिये कुछ मरहठा सेना वहाँ रख दी। इससे मरहठो का साम्राज्य समस्त भारतवर्ष में फैल गया। शहाब-उद्दीन और उसके सहायक मरहठे अवध को जीतने का विचार कर रहे थे कि अवध के सूबेदार शुजा-उद्दौला ने रुहेलों से सन्धि करके उनके सरदार नजीब-उद्दौला को अपने साथ गांठ लिया और अहमदशाह अब्दाली को भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिये बुला भेजा। सन् १७५६ में अहमदशाह अब्दाली ने फिर पाचवीं बार भारत पर आक्रमण किया। परन्तु उसके दिल्ली पहुँचने के पहले ही शहाब-उद्दीन सम्राट् आलमगीर द्वितीय की हत्या करके भाग गया। शहाब-उद्दीन गुप्त रूप से शुजा-उद्दौला, नजीब-उद्दौला और अहमदशाह अब्दाली से मिला हुआ था और इसके बाद किसी ने उसका नाम भी नहीं सुना। वह सदैव के लिए भारत के राजनीतिक रगमच मे लुप्त हो गया। सन् १७६१ में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, मरहठो को भारी पराजय हुई। इस युद्ध के पश्चात् शुजा-उद्दौला मन्त्री नियुक्त हुआ और नजीब-उद्दौला सेनापति बना।

जब अहमदशाह अब्दाली अनूपनगर में मरहठो से लडने की तैयारी कर रहा था तो सिक्खों ने सन् १७६० में लाहौर को लूट कर

जला दिया इसके बाद कुछ सिक्ख सरदारों ने अमृतसर और गुरदासपुर के इलाकों में लूटमार आरम्भ कर दी और कुछ सेना लेकर सरहन्द की ओर बढे। पानीपत की लड़ाई के बाद अहमदशाह अब्दाली चुपके से पञ्जाब से चला गया। उसने सिक्खों को कुछ न कहा परन्तु सन् १७६२ में उसने फिर सिखों के दमन के लिये भारत पर छठा आक्रमण किया। इस बार लुधियाना के समीप अब्दाली के साथ सिक्खों का सामना हुआ। इस युद्ध में असख्य सिक्ख मारे गये। यह घटना अब तक सिक्खों में घलुघारा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद अहमदशाह अब्दाली ने उचित समझ कर एक हिन्दू काबुली मल को लाहौर का हाकिम नियुक्त किया। परन्तु सन् १७६५ में सिक्खों ने काबुली मल को भी निकाल दिया। अब लाहौर पर सिक्ख सरदारों का अधिकार हो गया और लाहौर प्रान्त सदैव के लिये अब्दाली के हाथ से निकल गया। यद्यपि सन् १७६७ में अहमदशाह अब्दाली ने फिर एक बार भारत पर आक्रमण किया पर सफल मनोरथ न हो सका।

पंजाब सिक्ख-राज्य के आरम्भ के पूर्व

फर्रुखसियर के समय में लाहौर प्रान्त के सिक्खों ने विद्रोह खड़ा किया था। उस समय लाहौर और मुलतान का सूबेदार अब्दुल समद खां नियुक्त किया गया था। उसने सिक्खों के सरदार बंदा बैरागी को गिरफ्तार करके उसे मरवा दिया। इस अवसर पर बंदा बैरागी के अन्य सिक्ख साथी भी अधिक संख्या में मारे गए। इसके बाद जब तक वह लाहौर और मुलतान का सूबेदार रहा पंजाब के सिक्ख चुप रहे। परन्तु सन् १७२६ में उसका पुत्र जकरिया खां पंजाब का सूबेदार बना तो सिक्खों ने फिर विद्रोह कर दिया। जकरिया खां ने १७ वर्ष अर्थात् सन् १७४३ तक शासन किया। इस सूबेदार का शासन-काल पंजाब में बहुत प्रसिद्ध है। अपने पिता अब्दुल समद की भांति यह भी एक अत्यन्त कठोर शासक था। उसका शासन-काल हिन्दुओं और विशेष कर सिक्खों

मीर मन्नू और अहमदशाह अब्दाली

जब दिल्ली दरबार को यह ज्ञात हुआ कि मीर मन्नू ने अहमदशाह अब्दाली को सस्ते दामों छोड़ दिया है और सिक्खों को दबा कर अपना शासन सुदृढ़ कर लिया है तो मन्त्री सफदर जंग ईर्ष्या और द्वेष की आग से जल उठा। उसने मीर मन्नू की शक्ति कम करने के विचार से मुलतान की सूबेदारी उनसे छीन कर शाह नवाज को दे दी। यह देख मीर मन्नू को बहुत क्रोध आया और उसने अपने दीवान कूड़ामल को शाहनवाज से लड़ने के लिये भेजा। इस युद्ध में शाहनवाज मारा गया। उसके बाद मीर मन्नू ने कूड़ामल को मुलतान का सूबेदार बना दिया। मीर मन्नू का भाग्य-सूर्य इस समय पूरे तेज से चमक रहा था। उसका प्रतिद्वन्दी शाह नवाज़ मारा गया था। दिल्ली का शासन इस समय निर्बल था अहमदशाह अब्दाली को भी वह एक बार हरा चुका था। अब उसे किस बात की चिन्ता थी। उसे किसी से भी डर नहीं था। इसलिये उस ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित करके अब्दाली को चार परगनों का लगान देना भी बन्द कर दिया। अन्त को सन् १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तीसरा आक्रमण किया। राजा कूड़ामल युद्ध में मारा गया और मीर मन्नू पराजित हुआ। सन् १७५२ में अहमदशाह अब्दाली ने लाहौर मुलतान के प्रान्तों को अपने साम्राज्य में मिला लिया, परन्तु अपनी ओर से मीर मन्नू ही को सूबेदार रहने दिया।

मीर मन्नू की मृत्यु

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय सिक्खों ने देश में फिर लूट-मार आरम्भ कर दी थी और अमृतसर के पूर्व में सब इलाके पर फिर अधिकार जमा लिया था। इसलिए अब्दाली के प्रस्थान के बाद भी मीर मन्नू ने फिर सिक्खों का दमन करने की ठानी। उसने जालन्धर के फौजदार अदीना बेग को आज्ञा दी कि वह सिक्खों को उचित दण्ड दे। परन्तु अदीना बेग वास्तव में सिक्खों से मिला हुआ था और यद्यपि उसने माखोवाल पर

इस बार पानीपत की लड़ाई में मरहठों की भारी पराजय हुई और वह पञ्जाब से निकाल दिए गये। परन्तु पञ्जाब अब्दालियों के हाथ में भी न रहा।

जब अहमदशाह अब्दाली पानीपत की लड़ाई के बाद पञ्जाब से वापस हुआ और उसके सूबेदारों को सिक्खों ने देश से निकाल दिया तो सूबा दिल्ली की फौजदारी सरहन्द में और सूबा लाहौर में विविध इलाकों पर सिक्ख सरदारों ने अधिकार जमा लिया। इस समय छोटी बड़ी कुल १२ रियासतें स्थापित हुईं जिनको इतिहास में मिसलें कहा जाता है। इनमें से चार मिसलें तो इलाका सरहन्द में थीं और आठ सूबा लाहौर में। इलाका सरहन्द में सब से बड़ी मिसल रियासत फुलकिया थी और इसकी स्थापना करने वाला एक व्यक्ति फूल नामी था। इसके अतिरिक्त इलाका सरहन्द में तीन और मिसलें स्थापित हुई थीं। इनके नाम क्रमशः करोड़ सिंघिया, निशानिया और शहीदिया हैं। वर्तमान रियासत कलसिया तो मिसल करोड़ सिंघिया की ही उत्तरवर्ती है। और शेष दो मिसलें जो सतलुज के दक्षिण में थीं वे अत्यन्त छोटी थीं। उनको महाराजा रणजीतसिंह ने जीत लिया।

सिक्ख रियासतों और अन्य सिक्ख मिसलों की स्थापना

लाहौर प्रान्त में आठ मिसलें स्थापित हुईं। इनमें सब से बड़ी मिसलों के नाम क्रमशः कपूरथला, भंगिया सकर चकिया हैं। रियासत कपूरथला सन १७७७ में सरदार जस्सासिंह ने स्थापित की थी। इसके एक उत्तराधिकारी को रणजीतसिंह ने अपना धर्म का भाई बना लिया था। मिसल भंगिया का नाम इसलिए प्रसिद्ध है कि इसको स्थापित करने वाले भंग में अधिक रुचि रखते थे। सन् १८०६ में भंगियों के समस्त इलाके महाराजा रणजीतसिंह ने हाथ लगा गये। मिसल सकर चकिया की नींव अहमदशाह अब्दाली के जाने के बाद एक सिक्ख सरदार चड़तसिंह ने

लाहौर प्रान्त की आठ मिसलें

सकर चकिया मिसल का सरदार बना । रणजीतसिंह अत्यन्त योग्य और बुद्धिमान शासक सिद्ध हुआ और सब सरदारों में प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाने लगा । सन् १७९९ मे काबुल के शासक शाहजमान ने पञ्जाब पर आक्रमण किया । वह लाहौर तक आया परन्तु पश्चिम से ईरानियों द्वारा अफगानिस्तान पर आक्रमण हो जाने के कारण उसे वापस जाना पड़ा । जाते समय उसकी तोपें जेहलम नदी मे डूब गईं । रणजीतसिंह ने उन्हें निकलवा कर शाहजमान के पास भिजवा दिया और उसने प्रसन्न होकर रणजीतसिंह को लाहौर का शासक बना दिया । परन्तु उस समय लाहौर पर भङ्गियों का अधिकार था । रणजीतसिंह ने सन् १७९९में भङ्गियों को लाहौर से निकाल कर नगर पर स्वयं अधिकार कर लिया । सन् १८०२ में उसने कपूरथला रियासत के सरदार फतहसिंह आहलूवालिया की सहायता से अमृतसर जीत लिया और कन्हैया मिसल के सिक्खों की सहायता से उसने भङ्गियों के इलाके अपने अधिकार में कर लिये । सन् १८०२ में कसूर के पठानों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । अब सन् १८०५ में मध्य पञ्जाब मे केवल तीन ही राज्य रह गये । [illegible] के पहाड़ी इलाके में संसार चन्द कटोच छोटे छोटे पहाड़ी राजाओं को दबा कर अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था । जालन्धर, होशियारपुर और लुधियाने के इलाकों मे फतहसिंह आहलूवालिया अपने साम्राज्य की वृद्धि कर रहा था और लाहौर की वर्तमान कमिश्नरी और जिला गुजरात के इलाके में रणजीतसिंह का राज्य स्थापित हो चुका था । उस समय काश्मीर, रावलपिंडी, शाहपुर, खुशाब, झङ्ग और [illegible] इत्यादि के इलाके काबुल साम्राज्य के अन्तर्गत थे । परन्तु [illegible] की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में गद्दी के लिये [illegible] इलाकों के शासकों ने भी विद्रोह का [illegible] । [illegible] सिंह ने इसे अच्छा अवसर समझ कर सन् १८०६ [illegible]

माँगी। उन दिनों फ्राँस के सम्राट् नेपोलियन बोनापार्ट और रूस के जार में मित्रता थी। वे दोनों संगठित होकर अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकालने की सोच रहे थे। लार्ड मिन्टो गवर्नर जनरल ने सर चार्ल्स मेटकाफ को इसलिए पंजाब में भेजा कि रणजीतसिंह इलाका सरहिन्द की रियासतों में हस्तक्षेप न करे। अन्त में सन् १८०९ में अंग्रेजी शासन और रणजीतसिंह में सन्धि हो गई। सरहिन्द की रियासतें अंग्रेजों के अधीन हो गईं और सतलुज नदी अंग्रेजों और रणजीतसिंह के साम्राज्यों में सीमा मानी गई। इस सन्धि के अनुसार संसार चन्द कटोच और फतहसिंह आहलूवालिया के इलाके महाराजा रणजीतसिंह के अधीन समझे गये। इस सन्धि-पत्र के बाद पंजाब में एक ही शक्ति रह गई और वह रणजीतसिंह की थी।

जम्मू आदि की विजय

सन् १८०९ के सन्धि-पत्र के पश्चात् रणजीतसिंह को अपनी दक्षिणी सीमा की ओर से कोई शंका न रही और अब उसने काबुल के अधीन इलाकों को जीतने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। परन्तु इस काम को हाथ में लेने से पहले उसने पहाड़ी इलाके की छोटी-छोटी रियासतों को अपने साम्राज्य में मिला लेना उचित समझा। सन् १८०९ में जम्मू पर रणजीतसिंह ने विजय प्राप्त की और जम्मू का इलाका रणजीतसिंह के साम्राज्य में मिल गया। सन् १८१० में रणजीतसिंह ने कांगड़े की पहाड़ियों से गोरखों को निकाल दिया, और स्वयं कांगड़े पर अधिकार जमा लिया। सन् १८१५ में उसने जम्मू और काश्मीर के बीच की राजौरी भिम्बर इत्यादि छोटी छोटी-रियासतों को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

खड़ा कर किया। काश्मीर का सूबेदार मुहम्मद अजीम भी सेना लेकर काबुल की ओर चल पड़ा। रणजीतसिंह ने उचित अवसर समझ कर सिन्ध नदी को पार करके पेशावर पर चढ़ाई कर दी। पेशावर के सूबेदार जहांदाद खाँ ने अधीनता स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् रणजीतसिंह सिन्ध पर खैराबाद के इलाके में सेना नियुक्त कर के पंजाब वापस आया और लाहौर पहुँच कर काश्मीर जीतने का प्रयास करने लगा। सन् १८१६ में काश्मीर जीत लिया गया। काश्मीर को जीतने के बाद रणजीतसिंह मुलतान की ओर बढ़ा और सिन्ध को पार करके उसने काबुल के एक और अधीन इलाके पर अधिकार जमा लिया और नवाब बहावलपुर को अपनी ओर से इलाके का शासक नियुक्त करके लाहौर को वापस लौट आया। सन् १८२१ में लय्या, मानकेरा, डेरा इस्माईल खां इत्यादि के इलाके भी जीत कर रणजीतसिंह के साम्राज्य में मिला लिए गए। इन दिनों मन्त्री फ़तहखां का भाई मुहम्मद अजीमखां काबुल का सूबेदार था। उसने सन् १८२३ में पेशावर पर आक्रमण किया परन्तु नौशहरा की लड़ाई में पठानों की भारी पराजय हुई। इसके बाद रणजीतसिंह ने और बड़ा इलाका अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। सन् १८२३ में उसके साम्राज्य ने पूरा विस्तार प्राप्त कर लिया था।

रणजीतसिंह द्वारा सेना का सुधार

अपने शासन-काल के प्रारम्भ में ही रणजीतसिंह यह बात भली भाँति जान गया था कि अंग्रेजों की सफलता का कारण उनकी सुशिक्षित तथा सुसंचालित सेना है और इसी सेना की सहायता से वे भारत में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने में सफल हो रहे हैं। जब सन् १८०५ में लार्ड लेक और सन् १८०९ में सर चार्ल्स मेटकाफ पंजाब में आए तो उसने वैयक्तिक अनुभव से ही यह अनुभव किया

रणजीतसिंह के राज्य का विस्तार

अपने शासन काल में रणजीतसिंह मुलतान, रावलपिंडी, काश्मीर पेशावर और मध्य पंजाब के समस्त बिखरे इलाकों को एक झण्डे तले ले आया था और पंजाब में एक दृढ साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ था। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे वैयक्तिक राज्यों की भांति सिक्ख साम्राज्य भी नष्ट हुआ।

रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी

रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद उसका बडा पुत्र खडकसिंह सिंहासन पर बैठा और राजा ध्यानसिंह उसका मन्त्री नियुक्त हुआ। खडकसिंह अत्यन्त दुर्बल प्रकृति का शासक था और शासन करने की योग्यता का उसमे सर्वथा अभाव था। हां, उसका पुत्र नौनिहालसिंह वास्तव मे योग्य व्यक्ति था। खडकसिंह केवल १४, १५ महीने जीवित रहा। इस बीच में राज्य का सब काम नौनिहालसिंह ही करता रहा। इसके शासन-काल मे राजा गुलाबसिंह के सेनापति जोरावरसिंह ने लद्दाख, सकर्दू और गिलगित के इलाके जीत लिए। तिब्बत में सिन्ध नदी के निकास और झील मानसरोवर पर अधिकार जमा लिया और हिमालय के पार नेपाल की सीमा के साथ अपनी सीमा ला मिलाई। परन्तु दिसम्बर सन् १८४१ में जब सरदी जोरों पर थी तिब्बतियो ने डोगरो पर आक्रमण कर दिया। डोगरों को इस सरद मौसम मे लडने का अभ्यास न था, बहुत से मारे गए और कुछ बच कर अलमोडा और नैनीताल की पहाड़ियो के रास्ते हिन्दुस्तान को वापस हुए। अन्त मे डोगरों को तिब्बत का इलाका खाली करना पडा।

पंजाब में सिक्ख साम्राज्य का विनाश

खडकसिंह नवम्बर सन् १८४० में मर गया और नौनिहालसिंह भी उसी दिन हजूरी बाग के दरवाज़े की महराब गिरने से घायल होकर मर गया। कुछ दिन बाद सिक्ख सेना की सहायता से शेरसिंह सिंहासन पर

सेना ने बड़ी वीरता से युद्ध किया तब भी, क्योंकि इस सेना के नायक ही अंग्रेजों की जीत चाहते थे, सिक्खों की समस्त सेना नष्ट हो गई। अन्त को मार्च सन् १८४६ में रणजीतसिंह का साम्राज्य दो भागों में विभक्त हुआ। जम्मू, काश्मीर, लद्दाख सकर्दू और गिलगित महाराज गुलाबसिंह को दिए गए और शेष पंजाब में दिलीपसिंह को अंग्रेज़ साम्राज्य के अधीन राजा माना गया। परन्तु यह अधीन राज्य भी सन् १८४६ में समाप्त हुआ और सारा पंजाब अंग्रेजी साम्राज्य में मिल गया।

काबुल और कन्धार में नादिरशाह का उदय

हम पहले लिख चुके हैं कि मुगलों के समय में काबुल प्रान्त के अन्तर्गत काश्मीर, स्वात, पेशावर, दोनों डेरे, काबुल, गजनी, और क्वेटा के इलाके थे। परन्तु कन्धार और क्वेटा का इलाका शाहजहान के शासन-काल में ईरानियों ने जीत लिया था। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय बाद कन्धार के गिलजई और अब्दाली पठानों ने ईरानी राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सन् १७१० में कन्धार का गिलजई सरदार मीर वैस स्वतन्त्र हो गया। सन् १७१५ में अब्दालियों ने हिरात और खुरासान के इलाकों पर अधिकार जमा लिया। सन् १७२२ में मीर वैस के पुत्र मीर महमूद ने ईरानी सेनाओं को बुरी तरह हराया और शाह हुसैन को गद्दी से उतार कर स्वयं ईरान का बादशाह बन बैठा। जब सन् १७२५ में मीर महमूद मर गया तो उसके चचा का लड़का मीर अशरफ ईरान का बादशाह बना। परन्तु सन् १७३० में नादिर शाह ने उसे लड़ाई में हरा कर पुराने राज-वंश के एक कुंवर को ईरान की गद्दी पर बिठा दिया। इसके पश्चात् सन् १७३६ में नादिर शाह स्वयं ईरान का बादशाह बन बैठा।

जब नादिर शाह ने ईरान का शासन-प्रबन्ध अपने हा
उस समय मीर महमूद का छोटा भाई मी
का शासक था। नादिर शाह ने ईरा
पर बैठते ही ईरान साम्राज्य के अन्तर
को आज्ञा दी कि असफ़हान में उपस्थि

नादिर शाह और कन्धार

बादशाह के प्रति राजभक्ति की सौगन्ध लें। परन्तु पठ
चुके थे, मीर हुसैन ने नादिर शाह की अधीनता स्वीकार
कर दिया। नादिर शाह सेना लेकर कन्धार पर चढ आया
न भी वीरता के साथ सामना किया। नादिर शाह एक व
पर घेरा डाले पड़ा रहा और तब जाकर कहीं नगर पर
सका। परन्तु नादिर शाह मीर हुसैन की वीरता पर इत
कि उसने मीर हुसैन को ही अपनी ओर से कन्धार का स
कर दिया।

जिन दिनों कन्धार का घेरा डाला गया था, उन्हीं दि
शाह के पास दिल्ली के कई एक अधिका
से पत्र आये थे। उनमें उसे भारतवर्ष
करने का निमन्त्रण दिया गया था।
की विजय के बाद नादिर शाह काबुल
यह बात हम लिख आए हैं कि उस स

नादिर शाह का भारत पर आक्रमण

सीमान्त से सेना हटा ली थी और दर्रों के पठानों का भ
दरबार ने बन्द कर दिया था। नादिर शाह ने अब पठा
ओर से भत्ता देना आरम्भ कर दिया और उनको अपन
भरती कर लिया। पठान अब नादिर शाह के सहायक
उनकी सहायता से उसने काबुल पर अधिकार जमा लि

नादिर शाह से हार खाई और अन्त मे उसको नादिर शाह की अधीनता स्वीकार करनी पडी। नादिर शाह ने नासिर खा को अपनी ओर से काबुल का सूबेदार नियुक्त कर दिया और इसके बाद उसने सिन्ध नदी को पार कर लाहौर पर आक्रमण कर दिया। जब दिल्ली लूट कर नादिर शाह वापस आया तो पठानो ने रास्ते मे रुकावट डाली। नादिर शाह ने भारत की लूट में से दस लाख रुपया पठानों को दिया और शेष लूट का माल लेकर काबुल और कन्धार होता हुआ खुरासान पहुँचा। नादिर शाह ने अब मशहद को अपनी राजधानी बनाया, परन्तु सन् १७४७ में कुछ ईरानी अधिकारियो ने उसे मार डाला।

नादिर शाह की हत्या के समय एक व्यक्ति अहमद खा नादिर शाह की सेना मे एक पद पर नियुक्त था। उस समय वह केवल २३ वर्ष का नवयुवक था। अहमद खां का सम्बन्ध अब्दालियो के एक अत्यन्त प्रसिद्ध वश सद्दोजई से था। वह स्वय एक वीर, साहसी और दूरदर्शी युवक था। नादिर शाह की हत्या के पश्चात् पठान सेना मशहद से वापस हुई। कन्धार पहुच कर पठानों ने फिर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और वहा पर सब पठान सरदारों ने अहमद खां को अपना बादशाह चुना। अहमद खाँ ने गद्दी पर बैठते ही पठान जाति को एक सगठित तथा सुव्यवस्थित जाति बनाने की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। उसने अपने राज्य के सम्बन्ध मे कुछ नियम बनाए और निश्चय किया कि (१) पठानों का प्रत्येक कबीला और सम्प्रदाय अपने आन्तरीय मामलों में अपने अपने मलिक के अधीन स्वतन्त्र होगा। (२) साम्राज्य सम्बन्धी सब महत्त्वपूर्ण बातों का निर्णय मलिकों के परामर्श से ही होगा। (३) युद्ध के समय प्रत्येक मलिक का यह कर्तव्य होगा कि वह सम्राट् की सहायता के लिये

सद्दोजई वश

सेना का एक दस्ता भेजे और इस सेवा के बदले में मलिकों को एक खास भत्ता मिलेगा। परन्तु केन्द्रीय शासन मे समस्त पद केवल अब्दालियों के लिये ही सुरक्षित रखे गए। इस नीति से अहमद खाँ ने अपना राज्य एक राष्ट्रीय राज्य मे बदल दिया और समस्त पठान जाति ने उसे अपना राष्ट्रपति मान लिया। बादशाह बनते ही अहमद शाह ने यह चाहा कि समस्त पठान जाति एक ही बादशाह के अधीन हो जाये परन्तु काबुल और गजनी अभी तक नासिर खाँ के अधीन थे। अहमद शाह ने नासिर खाँ को आदेश दिया कि वह उसकी अधीनता स्वीकार करे। परन्तु नासिर खाँ ने काबुल में मुगल साम्राज्य की अधीनता की घोषणा कर दी और अहमद शाह का सामना करने के लिये तैयार हुआ। दिल्ली से तो उसे भला क्या सहायता मिलती, उसने स्थानीय पठानों को ही अपनी सेना में भरती करना आरम्भ कर दिया परन्तु उस समय पठानों मे राष्ट्रीय भाव बढ़ा हुआ था। उन्होंने अपने सजातीय बादशाह अहमद शाह के विरुद्ध लड़ने से इनकार कर दिया और अहमद शाह ने किसी कठिनाई के बिना गजनी पर अधिकार कर लिया। नासिर खाँ पीछे हट कर पेशावर आ ठहरा परन्तु वहाँ भी वह हारा। नासिर खाँ अब सिन्ध नदी को पार कर के पजाब में भागा आया परन्तु अहमद शाह ने भी पजाब पर आक्रमण कर दिया। हम पहले कह आए है कि अहमद शाह ने पंजाब पर आठ आक्रमण किए थे। सन् १७५२ मे उसने लाहौर और मुलतान के प्रान्तों को अपने साम्राज्य मे मिला लिया। सन् १७५६ मे काश्मीर और फौजदारी सरहन्द का इलाका भी अब्दाली साम्राज्य में मिल गया और पश्चिम की ओर अहमद शाह ने खुरासान जीत लिया।

बारकजाई वंश

जब सन् १८१८ में मन्त्री फतह खाँ मारा गया और अफगानिस्तान में सद्दोजई पठानों के साम्राज्य का अन्त हुआ तो काबुल उस समय मुहम्मद अजीम के पास था। ग़ज़नी पर दोस्त मुहम्मद खाँ का अधिकार था।

पुरदिल खाँ के हिस्से में कन्धार आया था। जब्बार खाँ काश्मीर पर राज्य कर रहा था और यार मुहम्मद खाँ पेशावर पर शासन कर रहा था। आरम्भ में तो इन बारकजई भाइयों ने सद्दोजई राज-वंश ही में से किसी को बादशाह बनाना चाहा, परन्तु वास्तव में इस वंश में अब कोई ऐसा योग्य व्यक्ति न था जो बादशाह बन सकता। अहमद शाह अब्दाली का साम्राज्य अब कई टुकड़ों में विभक्त हो गया था। खुरासान तो पहले ही साम्राज्य से निकल चुका था। अब हिरात, बलख और बदख्शां भी स्वतन्त्र हो गए। काश्मीर, रावलपिण्डी, दोनों डेरे और मुलतान महाराजा रणजीतसिंह ने जीत लिए। शेष इलाके में बारकजई भाइयों ने अपनी पृथक् रियासतें बना लीं। सन् १८२३ में काबुल के शासक मुहम्मद अज़ीम का देहान्त हुआ तो दोस्त मुहम्मद खां ने काबुल पर अधिकार जमा लिया और थोड़ी ही देर बाद उसने जलालाबाद के इलाके को भी जीत लिया। सन् १८३४ में शाह शुजा ने कन्धार पर आक्रमण किया और कन्धार के शासकों ने दोस्त मुहम्मद खां से सहायता मांगी। दोस्त मुहम्मद खां तत्काल सेना लेकर कन्धार की ओर बढ़ा। शाह शुजा की भारी पराजय हुई। इसके बाद कन्धार भी एक प्रकार से दोस्त मुहम्मद खाँ के अधीन हो गया। इस विजय ने दोस्त मुहम्मद को समस्त पूर्वीय अफ़गानिस्तान का स्वामी बना दिया। सन् १८३५ में वह अमीर-उल-मोमनीन का नाम रख कर काबुल का बादशाह बन गया। उसने अमीर बनते ही सब प्रान्तों में अपने पुत्रों को सूबेदार बना कर भेज दिया। इसके बाद उसने सेना में वृद्धि करनी आरम्भ की और महाराजा रणजीतसिंह से पेशावर का इलाका वापस ले लेने का प्रबन्ध करने लगा। सन् १८३६ में ईरानी तो अफ़गानिस्तान से हिरात वापस लेने का यत्न कर रहे थे और दोस्त मुहम्मद खाँ रणजीतसिंह से पेशावर लेने की चिन्ता में था। सन् १८३७ में दोस्त मुहम्मद खाँ ने पेशावर

हिरात दोस्त मुहम्मद खां के भतीजे अहमद खां को दिया गया। परन्तु क्योंकि इस युद्ध के पश्चात् भी ईरानी गुप्त रूप से हिरात में षड्यन्त्र कर रहे थे, इसलिए सन् १८६३ मे दोस्त मुहम्मद खां ने फिर हिरात पर चढाई कर दी और इस इलाक़े को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। परन्तु इस घटना के कुछ दिन बाद ही दोस्त मुहम्मद खाँ की मृत्यु हो गई और उसका लड़का शेरअली अमीर अफ़गानिस्तान बना।

मुलतान और सिंध

मुहम्मद शाह बादशाह के समय मे मुलतान का प्रान्त लाहौर के सूबेदार अब्दुल समद खां के अधीन था। उसकी मृत्यु के बाद जब जकरिया खां लाहौर का सूबेदार बना तो उसका पुत्र शाह नवाज खाँ मुलतान का सूबेदार नियुक्त हुआ। उस समय मुलतान प्रान्त मे मुलतान की वर्तमान कमिश्नरी, रियासत बहावलपुर, जिला सक्खर, शिकारपुर और सिबी के इलाके शामिल थे। जब सन् १७३६ में सूबा मुलतान में से सिन्ध पार का सारा इलाका नादिर शाह के साम्राज्य मे मिल गया तो सादिक़ मुहम्मद खां, जिसको नवाब मुलतान की ओर से सतलुज के दक्षिण में कुछ इलाके की जमींदारी मिली हुई थी, नवाब माना गया और नादिर शाह ने उसको अपनी ज़मींदारी के अतिरिक्त सक्खर और शिकारपुर का इलाका भी दे दिया।

कल्होडा वंश

उन समय सक्खर का फौजदार नूर मुहम्मद कल्होडा था और सक्खर और शिकारपुर का इलाका उसके अधीन था। जैसा अभी बताया गया है सक्खर और शिकारपुर का इलाका तो उससे ले कर नवाब सादिक मुहम्मद खाँ को दे दिया गया परन्तु नादिर शाह ने नूर मुहम्मद को अपनी ओर से दक्षिण सिन्ध का सूबेदार बना दिया। पश्चिम मे एक बरूही सरदार मीर मुहब्बत ने एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर रखा था। उसने भी नादिर शाह की अधीनता स्वीकार कर ली। उसको सिबी का इलाका दिया

गया। परन्तु जब इस प्रकार साम्राज्य का प्रबन्ध करके नादिर शाह कन्धार को वापस चला गया और सन् १७७४ में वह मशहद में कत्ल कर दिया गया तो सिन्ध के सूबेदार नूर मुहम्मद खाँ ने शिकारपुर पर आक्रमण कर दिया। सादिक मुहम्मद खाँ युद्ध में मारा गया। सक्खर और शिकारपुर फिर नूर मुहम्मद खाँ के अधिकार में आ गए। सादिक मुहम्मद खाँ के पुत्र बहावल खाँ ने भाग कर अपनी जमींदारी में आश्रय लिया। इस इलाके में सन् १७४८ में उसने नगर बहावलपुर की नींव रखी। बहावल खाँ ही वर्तमान बहावलपुर रियासत का प्रथम संस्थापक है और नवाब बहावलपुर का पूर्वज है। सन् १७५२ मे मुलतान के प्रान्त का शेष भाग भी मुगल साम्राज्य से पृथक् हो कर अब्दाली साम्राज्य में मिल गया। सिन्ध मे नूर मुहम्मद खाँ कल्होड़ा १७५४ में मर गया और उसके बाद उसके पुत्र गुलाम शाह ने समस्त दक्षिण सिन्ध पर अधिकार कर लिया। सन् १७६८ मे उसने पुराने हिन्दू नगर नीरों के खण्डहरों पर वर्तमान हैदराबाद नगर की नींव रखी। सन् १७७२ में उसकी मृत्यु हुई परन्तु उसके बाद गद्दी के लिए उसके पुत्रों में झगड़ा छिड़ गया। यह वंश १७८३ तक सिन्ध में राज्य करता रहा।

सिन्ध का तालपुर वंश

सन् १७८३ में सिन्ध मे तालपुर सरदारों ने तीन रियासतें स्थापित की थीं। एक हैदराबाद दूसरी मीरपुर खास और तीसरी खैरपुर में। अंग्रेजों ने पहले पहल एक व्यापारिक कोठी सन् १७५८ में ठट्ठा में स्थापित की थी परन्तु सन् १७७५ में सरफराज खाँ कल्होड़ा के राज्य की सख्तियों से तंग आकर उनको यह कोठी बन्द करनी पड़ी थी। फिर जब फतह खाँ तालपुर ने सन् १७९५ में खान कलात से करांची जीत लिया था तो उस समय यह बन्दरगाह एक अच्छी व्यापारिक मंडी थी। सन् १७९९ में अंग्रेजों ने भी यहाँ पर व्यापार आरम्भ कर दिया।

सन् १८०२ में फतहअली खां का देहान्त हो गया और उसके भाइयों ने शासन में कोई रुकावट न पड़ने दी। सन १८०३ मे शाह शुजा ने सिन्ध पर आक्रमण कर दिया और तालपुर सरदारो ने दस लाख रुपया भेंट करके अपना पीछा छुड़ाया। सन् १८०८ में जब अंग्रेजों ने रणजीतसिंह, शाह शुजा और शाह ईरान से फ्रासीसियो के विरुद्ध सन्धि की थी तो उस समय इसी प्रकार की एक सन्धि सिन्ध के सरदारों से भी हुई थी। सन् १८२० में सिन्ध के सरदारो ने यह स्वीकार किया था कि वे अपनी रियासत में किसी यूरोपियन को नौकर नहीं रखेंगे। सन् १८३२ मे अंग्रजो से एक सन्धि हुई जिसके द्वारा अंग्रेजों को सिन्ध में खुला व्यापार करने की आज्ञा मिल गई परन्तु अंगेजो ने यह प्रतिज्ञा की कि सिन्ध मे से कोई सेना या सेना का सामान न ले जाया जायगा। इसी तरह की एक प्रतिज्ञा अंग्रेजो ने मीर खैरपुर से भी की।

सिन्ध पर अंग्रेजों का आधिपत्य

जब अफगानिस्तान में मुहम्मद अजीम की मृत्यु के बाद युद्ध छिड़ा हुआ था तो खैरपुर और हैदराबाद के सरदारों ने मिल कर सन् १८२४ में शिकारपुर पर अधिकार जमा लिया और सन् १८२६ मे रणजीतसिंह ने मिज़ारी बलोचों के इलाके पर आक्रमण करके रोझान ले लिया। सिन्ध के अमीर रणजीतसिंह से बहुत डरते थे। उन्होंने अंगेजों से सहायता मागी। अंग्रेज सहायता करने को तैयार हो गए और सिन्ध की रियासतें सन् १८३७ में उनके अधीन हो गईं और अब आगे के लिए सिन्ध सिक्खों से सुरक्षित हो गया। अफगानिस्तान के पहले युद्ध मे अंग्रेज अपनी सेनाएँ सिन्ध के रास्ते क़न्धार ले गए। इस पर सिन्धी सरदारों ने आपत्ति की। अस्तु को सन् १८३६ मे सिन्ध के आगामी प्रबन्ध के लिए

चिन्ता थी, अनाथो और दुखियो की सहायता का किसे ध्यान था ? इस युग मे तो भारत मे स्वार्थपरता, विलासता, निर्दयता और क्रूरता का राज्य था और यही कारण था कि उस समय भारतवर्ष आसानी से जीता गया। परन्तु यह विजय कुछ काल तक भारत के लिए लाभकारी प्रमाणित हुई। भारतवर्ष मे ऐसी जाति का राज्य था जो अब पश्चिमी सभ्यता में सबसे आगे बढी हुई थी। भारतवर्ष मे इस जाति का राज्य स्थापित होने से वैयक्तिक राज्य का अन्त हो गया। कानून का राज्य हुआ और यह देश, जो अब तक कुएँ के मेढक की भांति बाहर की दुनिया से अनभिज्ञ था, अब आधुनिक युग के आन्दोलनो म भाग लेने के लिए बाधित हुआ और यह अनुभव करने के योग्य हुआ कि आगे के लिए अपनी हानि और लाभ को सोच सके तथा अपनी उन्नति के रास्ते ढूँढ सके। आगामी पचास वर्ष म ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने साम्राज्य का भारतवर्ष में और भी विस्तार किया और अपनी शासन-पद्धति को सुदृढ करके इस देश मे पश्चिमी सभ्यता का बीज बो दिया।

प्रश्न

१. मुहम्मद शाह बादशाह के शासन-काल मे मुगल साम्राज्य का उत्तर-पश्चिमी भाग किस भाति विभक्त हुआ ?

२. अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो पर एक नोट लिखो और बताओ कि इन आक्रमणो से क्या लाभ हुआ ?

३ पजाब मे सिक्ख राज्य का विवरण लिखो और बताओ कि किस प्रकार यह राज्य आरम्भ हुआ और किस भाति बढा ?

४. सन् १७९२ से १८४९ तक पजाब में सिक्ख राज्य का इतिहास सक्षिप्त रूप से वर्णन करो।

५. सन् १७१० से १८२४ तक काबुल और कन्धार का इतिहास सक्षिप्त रूप से लिखो ?

६. सन् १७३६ से १८४३ तक सिन्ध का इतिहास संक्षिप्त रूप में वर्णन करो ?

७. अहमदशाह अब्दाली पर नोट लिखो। (पं० यू० १९२६, १९२७)।

८. महाराजा रणजीतसिंह का जीवन चरित लिखो और उसके शासन-काल में सिक्ख-शक्ति का वर्णन करो।

(पं० यू० १९१७, १९२३, १९२६, १९३३)

९. गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के जीवन वृत्तान्त और उनकी शिक्षा का विवरण संक्षिप्त रूप से दो। क्या कारण है कि सन् १७६८ और १८४५ के बीच में सिक्ख एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए। (प० यू० १९२३)

नवाँ अध्याय

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का साम्राज्य

लार्ड कार्नवालिस १८०५

सर जार्ज बार्लो १८०५–१८०७

लार्ड मिन्टो (प्रथम) १८०७–१८१३

लार्ड कार्नवालिस का दोबारा गवर्नर होना।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरो ने लार्ड वेलेजली को वापस बुला कर लार्ड कार्नवालिस को दोबारा गवर्नर जनरल बना कर भारत भेजा और उसको कहा गया कि वह देशीय रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप न करे परन्तु सूबेदार अवध, पेशवा और निजाम के साथ की गई सन्धियों का पालन करना असम्भव था। इसलिए वह अब केवल इतना ही कर सकता था कि सिन्धिया और होल्कर से कोई नई सन्धि न करे जिससे उनकी रियासतें भी अधीन रियासतों में गिनी जाकर भारत की अंग्रेजी सरकार को और उलझनों मे न डाल दे। लार्ड कार्नवालिस सिन्धिया को मनाने और होल्कर से युद्ध समाप्त करने के विचार से बंगाल मे पहुँचते ही उत्तरी भारत को चल पडा। उसने यह दृढ निश्चय कर लिया था कि गवालियर और गोहद का इलाका सिन्धिया को दे दे और जमुना पार आगरा के अतिरिक्त सब देश छोड दे। उसका यह भी विचार था कि दिल्ली का इलाका सिन्धिया को दोबारा वापस किया जाए और आगे के लिए बादशाह शाह आलम को दिल्ली से लाकर अंग्रेजी इलाके में रखा जाए। परन्तु लार्ड लेक, जिसने सिन्धिया से उत्तरी भारतवर्ष जीता था, यह इलाका सिन्धिया को वापस देने के विरुद्ध था। कार्नवालिस अभी अपनी इच्छाओं को कार्य स्वरूप में न

सर चार्लस मेटकाफ़

पिछले अध्याय में बताया गया है कि काबुल के शासक शाह ज़मान ने सन् १७६६ में रणजीतसिंह को लाहौर का राजा मान लिया था। लाहौर पर अधिकार जमा कर रणजीतसिंह पंजाब के मध्यवर्ती ज़िले अपने आधिपत्य में ले आया था अब वह सतलुज नदी तक अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ा कर सतलुज के दक्षिण में मालवा की सिक्ख रियासतों और मसलों पर हाथ मारना चाहता था। इलाका सरहन्द के सिक्ख रईसों ने दिल्ली के अंग्रेज़ी अधिकारियों से सहायता मांगी। लार्ड मिन्टो ने यह उचित समझा कि रणजीतसिंह का इलाका अंग्रेज़ी इलाके के साथ न मिलने पाए, इसलिये उसने इलाका सरहन्द की सहायता करनी स्वीकार की और सर चार्लस मेटकाफ को दूत बना कर लाहौर भेज दिया। अप्रेल सन् १८०६ में अमृतसर में एक सन्धि-पत्र तैयार किया गया जिससे दोनों साम्राज्यों में मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो गया और सतलुज नदी दोनों राज्यों में सीमा मान ली गई। सतलुज के दक्षिण की रियासतें अंगरेज़ी राज्य के अधीन स्वीकार की गईं और अंग्रेज़ी साम्राज्य की सीमा जमुना नदी से बढ़कर सतलुज नदी तक आ पहुँची।

मौन्ट स्टूअर्ट एल्फिस्टन, सर जान मैल्कम और मि० स्मिथ

काबुल के शासक शाह शुजा के पास मौन्ट स्टूअर्ट एलफिंस्टन को दूत बना कर भेजा गया। उस समय शाह शुजा पेशावर में था। वहां पर अंग्रेज़ों ने शाह शुजा से यह प्रतिज्ञा ली कि वह अपने साम्राज्य में फ्रांसीसियों की सेनाओं को न घुसने देगा। ईरान में भी सर जान मेल्कम को दूत बना कर भेजा गया और ईरान सम्राट् से भी यह सन्धि हुई कि वह अंग्रेज़ों के किसी शत्रु को अपने साम्राज्य में से न गुज़रने देगा। इसी तरह सिन्ध में भी बम्बई से मि० स्मिथ को हैदराबाद के अमीरों

प्रश्न

१. लार्ड मिन्टो ने किन परिस्थितियों में हिन्द महासागर के विभिन्न द्वीपों को जीता ?

२. निष्पक्ष नीति से तुम्हारा क्या अभिप्राय है और यह नीति कब तक सफल रही ?

३. उत्तर-पश्चिमी सीमा की रियासतों के साथ लार्ड मिन्टो का सम्बन्ध बताओ ।

दसवां अध्याय

लार्ड मोयरा अर्थात् मारकिस आफ़ हेस्टिंग्ज़ १८१३-१८२३ और लार्ड एम्हर्स्ट १८२३-१८२८

कम्पनी के आज्ञा पत्र पर विचार

मारकिस आफ हेस्टिंग्ज के शासन-काल में सबसे पहला प्रश्न जो पार्लियामेंट में पेश हुआ वह यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आज्ञा-पत्र को समाप्त कर दिया जाए अथवा और बीस वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाए। पार्लियामेंट के सामने इस समय दो प्रश्न थे। पहला तो यह कि क्या कम्पनी के व्यापारिक अधिकार पूर्ववत् रहने दिए जाएँ अथवा उसे भारतवर्ष मे शासन करने का अधिकार दिया जाए। वास्तव में बात भी विचित्र थी कि एक व्यापारिक कम्पनी को एक विस्तृत देश पर राज्य करने की आज्ञा दी जाती अथवा एक साम्राज्य के स्वामी को व्यापार की आज्ञा होती। परन्तु बहुत वाद-विवाद के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में बीस वर्ष तक शासन करने का अधिकार मिला परन्तु भारत का व्यापार उससे छीन लिया गया और समस्त अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। इस १८१३ के आज्ञा-पत्र की एक और बात महत्व पूर्ण है। वह यह है कि चार्टर (आज्ञा-पत्र) में पार्लियामेंट ने कम्पनी पर यह शर्त लगा दी कि भविष्य में वह भारतवासियों की शिक्षा इत्यादि के लिए एक लाख रुपया वार्षिक अपनी आय में से खर्च करे।

लार्ड हेस्टिंग्ज़ वास्तव में लार्ड वेलेज़ली की नीति के विरुद्ध था परन्तु भारत में आकर उसको लार्ड वेलेज़ली की ही नीति

नेपाल की लड़ाई सन् १८१४-१६ का अनुसरण करके भारत के एक बड़े भारी इलाके को अंग्रेजी साम्राज्य के प्रभुत्व में लाना पड़ा। सब से पहले उसे नेपाल के गोरखों से युद्ध करना पड़ा। गोरखे वास्तव में राजपूत जाति से सम्बन्ध रखते थे। पृथ्वीराज पर विजय प्राप्त करके जब भारत में तुर्कों ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया तो आगरा, दिल्ली और अवध के राजपूतों में से कुछ तो भाग कर राजपूताने में चले ग और दूसरों ने भाग कर हिमालय पर्वत के पहाड़ी इलाकों में आश्रय लिया। वे राजपूत जो हिमालय के उन पहाड़ी इलाकों में बसे जो सतलुज और रियासत सिक्किम के मध्य में स्थित है, गोरखे कहलाए। कई शताब्दियों तक तो यह इलाका कई एक रियासतों म बटा रहा परन्तु सन् १७६८ में काठमाडू के राजा ने इर्द गिर्द के समस्त पहाड़ी राजाओं को अपने अधीन करके क विस्तृत साम्राज्य स्थापित कर लिया। उत्तर में तो वे हिमाचल के उच्च शिखरों के कारण अपने साम्राज्य का विस्तार न कर सकते थे परन्तु दक्षिण में उनके लिए मैदान खुला पड़ा था। धीरे धीरे उन्होंने बंगाल और गोरखपुर के इलाको में कई एक गावों पर अधिकार जमा लिया और लार्ड हेस्टिंग्ज को सन् १८१४ में नेपाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनी पड़ी। जनरल गिलैस्पी और जनरल आक्टर लोनी की अध्यक्षता में सेना भेजी गई। जनरल गिलैस्पी पराजित हो कर मारा गया परन्तु जनरल आक्टर लोनी ने वीरता के साथ गोरखा जनरल अमरसिंह को मलाऊँ के किले का घेरा डालकर हरा दिया और अंग्रेजी सेना नेपाल की राजधानी काठमाडू के समीप जा पहुची। गोरखों ने विवश होकर सन्धि की प्रार्थना की। सन् १८१६ में सिगौली में सन्धि-पत्र लिखा गया जिसके अनुसार कमाऊँ, गढवाल और शिमला के प्रदेश

प्रभाव था। दुर्बलता का लाभ उठा कर उन्होंने लूट-मार करना प्रारम्भ कर दिया था। इनमें [illegible] के गिरोह पचास-पचास मील तक [illegible] में ले कर [illegible] और [illegible] को [illegible] पहले ही उर्वर और आबाद इलाकों को लूट कर [illegible] थे। यह मरहठों की सेना के साथ साथ रहते थे और इनका एक-एक दस्ता वास्तव में होलकर और सिन्धिया की सेनाओं का अंग था। सन् १८१५ में उन्होंने निजाम के राज्य को आधा नदी तक लूट लिया और सन् १८१६ में उत्तरीय सरकार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। नेपाल के युद्ध से निपट कर लार्ड मोयरा ने, जिसे नेपाल के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर मारक्विस आफ हेस्टिंग्ज की उपाधि मिली थी, पिंडारियों के दमन का निश्चय कर लिया। उसका यह विचार था कि पिंडारियों को मालवे में एक लाख बीस हजार की सेना से घेर लिया जाए और इस सेना को चार भागों में विभक्त कर के मालवा पर चारों दिशाओं से आक्रमण किया जाए। दक्षिणी सेना का नेतृत्व गवर्नर जनरल ने स्वयं ग्रहण किया। सिन्धिया पर जोर डाल कर उसे अंग्रेजों की सहायता पर विवश किया। गया इसके बाद पिंडारियों को चारों ओर से घेर लिया गया। पिण्डारी सैनिक तो थे ही नहीं। लुटेरे मात्र थे। सन् १८१७ के अन्त तक उनके सब जत्थे टूट गए। बहुत से मारे गए, जो बचे उन्होंने अधीनता स्वीकार की और भविष्य के लिए शान्तिमय प्रजा बन गए। उनके सरदारों को निर्वाह के लिए जागीरें दे दी गईं। अमीर खां रुहेला को, जो राजपूताने में पिण्डारियों का सरदार था, टोंक की रियासत का नवाब बनाया गया। केवल एक सरदार चीतू ने अधीनता स्वीकार न की परन्तु उसका जत्था टूट गया और वह भी अन्त में असीरगढ़ के किले के पास एक शेर से मारा गया। इसके बाद पिण्डारियों का अन्त हो गया। इस आपत्ति से भारत की मुक्ति हुई।

मरहठों की चौथी लड़ाई

अभी पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध हो ही रहा था कि मरहठों से भी अंग्रेज़ों का युद्ध छिड़ गया। पेशवा बाजी राव इस चिंता में था कि वह फिर से मरहठा सरदारों के आगे का मुखिया बन जाए। जब पिण्डारियों से युद्ध शुरू हुआ तो उसने इस अवसर को अपनी आकांक्षापूर्ति के लिए उचित जाना। उसका विचार था कि अंग्रेज़ों को इतना अवकाश न मिलेगा कि वे उससे निपट सकें। उन दिनों गायकवाड़ की ओर से गंगाधर शास्त्री पूना सरकार से समझौता करने के लिये भेजा गया परंतु पेशवा के मंत्री त्र्यम्बक जी ने उसकी हत्या करवा दी। अंग्रेज़ों ने चाहा कि त्र्यम्बक जी को उन्हें सौंप दिया जाए परंतु पेशवा अपने मंत्री को बचाना चाहता था। उसने अंग्रेज़ों की छावनी किर्की पर आक्रमण कर दिया पर पेशवा की पराजय हुई और वह सितारा की ओर भागा। वहां भी वह परास्त हुआ। अन्त को असहाय पेशवा ने अपने आपको सर जान मैल्कम की दया पर छोड़ दिया। कम्पनी ने उसे आठ लाख रुपया वार्षिक पेनशन देकर बिठूर भेज दिया और सितारा के नाम मात्र राजा को सितारा का राजा स्वीकार करके खानदेश, नासिक, धारवाड़, बेलगाँव, रत्नगिरि और शोलापुर इत्यादि शेष ज़िलों को अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला कर बम्बई प्रान्त बनाया।

मरहठा युद्ध और मालवा आदि राज्य

पेशवा के विद्रोह पर नागपुर के मरहठा और भौंसला राजा और इन्दौर के शासक होल्कर ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया। पर क्रमशः सीताबल्डी और होल्कर की महीदपुर पर भारी हार हुई। भौंसला राज से मंडला, जबलपुर, दमोह, सागर, नरसिंहपुर, बैतूल, हुशंगाबाद और [illegible] छीन लिए गए और होल्कर से [illegible] दिया गया। इस युद्ध [illegible] हुआ।

सन् १८२३ मे लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने अपने अपने पद से त्याग-पत्र दिया। उस समय पंजाब, काश्मीर, अफगानिस्तान, सिंध, बलोचिस्तान के सिवा समस्त भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य स्थापित हो गया था।

लार्ड एम्हर्स्ट १८२३-१८१८

बर्मा की पहली लड़ाई

जिन दिनो बंगाल मे क्लाइव ने पलासी के युद्ध में विजय प्राप्त की थी उन्हीं दिनों बर्मा में एक बर्मी वंश के राजा अलम्पोर ने साम्राज्य की नींव रखी थी। इस बर्मी वंश ने रंगून प्रान्त और पीगु को जीत लिया और सन् १७६६ में सियाम के सम्राट् से तनासिरम भी ले लिया। सन् १७८४ मे अराकान का इलाका भी विजित हो इस बर्मी साम्राज्य का एक अंग बन गया। बंगाल के पूर्व में विभिन्न इलाकों को जीतते जीतते इस बर्मी शासक ने सन् १८२२ में आसाम को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। जब लार्ड हेस्टिंग्ज पिंडारियों और मरहठों के साथ युद्ध में व्यस्त था तब बर्मा के राजा ने अंग्रेजी कम्पनी को एक चिट्ठी लिखी कि चटगांव, ढाका, मुर्शिदाबाद और कासिम बाज़ार का इलाक़ा उसे सौंप दिया जाए। वह कदाचित् यह समझता था कि अंग्रेज मरहटों के युद्ध में व्यस्त होने के कारण उससे डर जाएँगे परन्तु लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने इस चिट्ठी को अकृत्रिम और जाली समझ कर उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इधर बर्मा के राजा को सियाम के राजा ने हरा दिया और वह चुप हो गया। परन्तु जब बर्मियों ने आसाम जीत लिया तो वे बंगाल की समस्त पश्चिमी सीमा पर अंग्रेज़ों के पड़ोसी हो गए। सन् १८२३ मे बर्मियों ने चटगाव के समीप अंग्रेज़ी द्वीप शाहपुरी पर आक्रमण कर दिया। जब लार्ड एमहर्स्ट ने बर्मा के राजा से इस आक्रमण का उत्तर माँगा तो उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया गया। अन्त में अंग्रेज़ों

ने बर्मियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेज़ी सेना ने बंगाल की खाड़ी को पार करके रंगून पर आक्रमण कर दिया और स्थल मार्ग से आसाम और अराकान पर भी चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर बारकपुर की भारतीय सेना ने कालापानी पार करने से इनकार कर दिया क्योंकि उनके विचार में समुद्र पार करना हिन्दू धर्म के विरुद्ध था। सेना के उस दस्ते को, जिसने बर्मा जाने से इनकार किया था, गोली से उड़ा दिया गया और इस प्रकार यह सेना विद्रोह दब गया। यह युद्ध दो वर्ष तक जारी रहा। अन्त में बर्मी सेना का नायक बन्दूला युद्ध में मारा गया और बर्मा सम्राट् ने संधि की प्रार्थना की। यन्दबू पर एक संधि-पत्र लिखा गया जिसके अनुसार बर्मा के सम्राट् ने आसाम, मनीपुर और कचार के इलाके अंग्रेजों को दे दिये। तनासरिम और अराकान के प्रान्त भी अंग्रेजों को सौंप गए। बर्मा के सम्राट ने एक करोड़ रुपया युद्ध का हर्जाना भी अंग्रेजों को दिया और शान्ति के लिए एक अंग्रेज दूत अपने दरबार में रखना स्वीकार किया।

लार्ड एमहर्स्ट के शासन-काल में एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई [illegible] जो उल्लेखनीय है। [illegible] एमहर्स्ट बर्मा के युद्ध [illegible] भरतपुर की विजय में [illegible] भरतपुर में [illegible] गया। यहाँ

को क़ैद करके बनारस भेजा गया और अल्प-वयस्क बलवन्तसिंह को दोबारा भरतपुर की गद्दी पर बिठाया गया।

इन घटनाओं के पश्चात् लार्ड एम्हर्स्ट उत्तरीय भारत की ओर गया। सन् १८०६ में सम्राट् शाह आलम का देहान्त हो चुका था। उसके पुत्र अकबर द्वितीय को केवल एक पेनशनिया समझा गया और पहली बार भारत के गवर्नर जनरल ने गर्मियों की ऋतु शिमला में व्यतीत की। इसके बाद धीरे-धीरे शिमला भारत सरकार की गर्मियों की राजधानी बन गई।

शिमला गर्मियों की राजधानी

प्रश्न

१. गोरखों के साथ अंग्रेजों की लड़ाई का वर्णन करो और इसके कारण भी लिखो।

२. पिण्डारियों के विरुद्ध लड़ाई क्यों आरम्भ हुई ?

मरहठों से अंग्रेजों की चौथी लड़ाई का विवरण दो और इस युद्ध के कारण भी लिखो ?

४. बर्मा से अंग्रेजों की पहली लड़ाई क्यों हुई और इसका परिणाम क्या निकला ?

५ भारतीय सरकार के सेना सम्बन्धी प्रबन्ध पर नोट लिखो।

प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार

लार्ड विलियम बैंटिङ्क का शासन काल साम्राज्य की अन्तरीय दशा के सुधार में व्यतीत हुआ। नेपाल, मरहठे, पिंडारी और बर्मा की लडाइयों में सरकार को बहुत खर्च करना पडा और कम्पनी पर कर्जा इतना बढ गया था कि उसका वार्षिक सूद भी आय में से नहीं दिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष कम्पनी की सरकार को आय से अधिक खर्च करना पडता था। इसलिए लार्ड विलियम बेंटिङ्क के सामने सब से पहला प्रश्न यह था कि किसी भाँति खर्च कम किया जाए और आय बढाई जाए। बङ्गाल के बन्दोबस्त को स्थायी करने में जो गलती की गई थी उसका अब पता चला क्योंकि बङ्गाल और बिहार के लगान में कोई वृद्धि न हो सकती थी। अत यह निर्णय किया गया कि कम्पनी के नए इलाकों में बन्दोबस्त बीस या तीस वर्ष के लिए किया जाए। आगरा, मद्रास और बम्बई के प्रान्तों में बन्दोबस्त अस्थायी रूप से किया गया। लार्ड विलियम बेंटिङ्क को आय बढाने की दूसरा उपाय यह सूझा कि मुगल-काल के जागीरदारों के आज्ञापत्रों का निरीक्षण किया जाए। बात यह थी कि मुगल साम्राज्य की अवनति के दिनों में कई एक जमींदारों और कर्मचारियों ने लगान का अधिकांशभाग जागीरों के रूप में दबा रक्खा था और इन जागीरों के समर्थन में उन्होंने झूठे आज्ञापत्र बना रखे थे। राज्य को बहुत हानि पहुँच रही थी। लार्ड विलियम बेंटिंक ने आज्ञा दी कि सब जागीरदारों के आज्ञापत्रों का निरीक्षण किया जाए और जिनके पट्टे झूठे व जाली सिद्ध हों उनकी जागीरें जब्त की जायँ। इस प्रकार से बहुत सी जागीरें जब्त हो गईं और सरकार के आय में वृद्धि हुई।

शासको की सभ्यता और संस्कृति का भली भाँति अध्ययन कर सकेंगे। परन्तु सरकार ने इस आवेदन-पत्र को अस्वीकार कर दिया। उनका विचार था कि भारतीय अंग्रेज शिक्षा प्राप्त कर के और पश्चिमी सभ्यता को जान कर अंग्रेज़ों की बराबरी करेंगे जिससे भारत में कम्पनी के शासन को धक्का पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त विल्सन और कोलब्रुक जैसे कई अंग्रेजों का विचार था कि भारतीयों की नैतिक उन्नति और मानसिक प्रगति के लिए उनकी प्राचीन भाषाओं का ज्ञान ही काफी है। इस लिए अंग्रेजी शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु कुछ ही वर्ष बाद इस बात का भली भाँति पता चल गया कि प्राचीन विद्याओं के अध्ययन के लिए भारतीय अपनी पुरानी संस्थाओं में जाते थे परन्तु इन कालेजों में आने का उद्देश्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना न था। इन कालेजों में तो वही लोग आते थे जिनका ध्येय पढ़कर नौकरियाँ प्राप्त करना था, परन्तु सरकारी नौकरी के लिये अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य्य था इसलिए धीरे धीरे सब कालेजों में अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ कर दी गई। अन्त में जब सन् १८३४ में लार्ड मकाले भारत सरकार का कानूनी सदस्य नियुक्त हुआ तो उसने अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में अपना निर्णय दिया। उसका यह विचार था कि अंग्रेजी सरकार के हित के विचार से भी यह आवश्यक है कि सरकारी दफ्तरों का काम अंग्रेजी भाषा में हो। अंग्रेज भारत में इतनी संख्या में नहीं आ सकते कि दफ्तरों की सब नौकरियों पर नियुक्त किए जा सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि भारतियों को क्लर्क भरती किया जाए। परन्तु भारतीय क्लर्क तब ही किसी काम के हो सकते थे, जब कि वे अंग्रेजी भाषा का भली भाति ज्ञान रखते हों। दूसरे लार्ड मेकाले का यह विचार था कि अंग्रेजी भाषा पढ़कर भारतीय पश्चिमी सभ्यता के रंग में इतने रंग जायेंगे कि शनैः शनैः उनका चाल-ढाल, रंग-ढंग सब पश्चिम वालों का सा हो जाएगा। वे यूरोपियन रीति के अनुसार जीवन व्यतीत करना

को कैद करके बनारस भेजा गया और अल्प-वयस्क बलवन्तसिंह को दोबारा भरतपुर की गद्दी पर बिठाया गया।

शिमला गर्मियों की राजधानी

इन घटनाओं के पश्चात् लार्ड एम्हर्स्ट उत्तरीय भारत की ओर गया। सन् १८०६ में सम्राट् शाह आलम का देहान्त हो चुका था। उसके पुत्र अकबर द्वितीय को केवल एक पेनशनिया समझा गया और पहली बार भारत के गवर्नर जनरल ने गर्मियों की ऋतु शिमला में व्यतीत की। इसके बाद धीरे-धीरे शिमला भारत सरकार की गर्मियों की राजधानी बन गई।

प्रश्न

१ गोरखों के साथ अंग्रेज़ों की लड़ाई का वर्णन करो और इसके कारण भी लिखो।

२. पिण्डारियों के विरुद्ध लड़ाई क्यों प्रारम्भ हुई?

मरहठों से अंग्रेजों की चौथी लड़ाई का विवरण दो और इस युद्ध के कारण भी लिखो?

४. बर्मा से अंग्रेजों की पहली लड़ाई क्यों हुई और इसका परिणाम क्या निकला?

५. भारतीय सरकार के सेना सम्बन्धी प्रबन्ध पर नोट लिखो।

प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार

लार्ड विलियम बेंटिङ्क का शासन काल साम्राज्य की आन्तरीय दशा के सुधार मे व्यतीत हुआ । नेपाल, मरहठे, पिंडारी और बर्मा की लड़ाइयो मे सरकार को बहुत खर्च करना पड़ा और कम्पनी पर कर्जा इतना बढ़ गया था कि उसका वार्षिक सूद भी आय मे से नहीं दिया जा सकता था । इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष कम्पनी की सरकार को आय से अधिक खर्च करना पड़ता था । इसलिए लार्ड विलियम बेंटिङ्क के सामने सब से पहला प्रश्न यह था कि किसी भाँति खर्च कम किया जाए और आय बढ़ाई जाए । बङ्गाल के बन्दोबस्त को स्थायी करने मे जो गलती की गई थी उसका अब पता चला क्योंकि बङ्गाल और बिहार के लगान में कोई वृद्धि न हो सकती थी । अतः यह निर्णय किया गया कि कम्पनी के नए इलाकों मे बन्दोबस्त बीस या तीस वर्ष के लिए किया जाए । आगरा, मद्रास और बम्बई के प्रान्तों में बन्दोबस्त अस्थायी रूप से किया गया । लार्ड विलियम बेंटिङ्क को आय बढ़ाने का दूसरा उपाय यह सूझा कि मुगल-काल के जागीरदारो के आज्ञापत्रो का निरीक्षण किया जाए । बात यह थी कि मुगल साम्राज्य की अवनति के दिनों मे कई एक जमींदारो और कर्मचारियों ने लगान का अधिकांशभाग जागीरो के रूप मे दबा रखा था और इन जागीरों के समर्थन मे उन्होंने झूठे आज्ञापत्र बना रखे थे । राज्य को बहुत हानि पहुँच रही थी । लार्ड विलियम बेंटिक ने आज्ञा दी कि सब जागीरदारो के आज्ञापत्रों का निरीक्षण किया जाए और जिनके पट्टे झूठे व जाली सिद्ध हो उनकी जागीरे जब्त की जायें । इस प्रकार से बहुत सी जागीरें जब्त हो गईं और सरकार के आय मे वृद्धि हुई ।

धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी। परन्तु राजा राम मोहन राय और उसके मतानुयायी यह समझते थे कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर के

राजा राम मोहन राय

अंग्रेजी शासन में नौकरी प्राप्त करने में सफल होंगे और उनके

आय बढ़ाने के अतिरिक्त विलियम बेंटिङ्क ने खर्च में भी बहुत कमी की। प्रत्येक विभाग में काट की गई लार्ड कार्नवालिस ने अदालतों में अंग्रेज जज नियुक्त किए थे परन्तु भारतीय जज कम वेतन पर मिल सकते थे। इसलिए छोटे पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। पृष्ठ ७२ पर बता दिया गया है कि लार्ड क्लाइव ने सेना का दोहरा भत्ता हटा कर अकहरा भत्ता कर दिया था। अब क्योंकि युद्ध का समय बीत चुका था और समस्त भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था इसलिए यह निर्णय किया गया कि भत्ते पर अधिक रुपया खर्च करने की आवश्यकता नहीं। अतः सेना का भत्ता आधा कर दिया गया। इस से सेना में बहुत अशान्ति फैली परन्तु लार्ड विलियम बेंटिङ्क ने धैर्य से काम लिया और अपने सुधारों में सफल रहा।

खर्च की कमी

सन् १८१३ में कम्पनी के आज्ञा-पत्र की अवधि में बीस वर्ष की वृद्धि हुई थी। १८३३ में यह अवधि समाप्त होगई। परन्तु अब इङ्गलैण्ड में स्वतन्त्र व्यापार का आन्दोलन चल रहा था और पार्लियामेंट ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उत्तरीय व्यापार का एकाधिकार देने को तैयार न थी। इसलिए चार्टर एक्ट (आज्ञा-पत्र) १८३३ के अनुसार कम्पनी के समस्त व्यापारिक अधिकार छीन लिए गए और लाभ के रूप में उन्हें यह अनुमति दी गई कि भारत की आय में से दस प्रतिशत लाभ के रूप में कम्पनी के हिस्सेदारों में बांट ले। दूसरा यह निर्णय हुआ कि बङ्गाल गवर्नर को समस्त भारत का गवर्नर जनरल बना दिया जाए और बम्बई तथा मद्रास सरकारों से कानून बनाने का अधिकार छीन कर भारत सरकार की प्रबन्धकारिणी समिति को सौंप दिया जाए। कानून बनाने के लिए प्रबन्धकारिणी समिति में एक और सदस्य की वृद्धि की गई और

१८३३ का आज्ञा-पत्र

एक पहला कानूनी सदस्य लार्ड मेकाले नियुक्त हुआ जो इङ्गलैण्ड का प्रख्यात इतिहासकार हो चुका है। इस आज्ञापत्र में एक महत्त्व की बात और यह थी कि भविष्य में धर्म, स्थान जन्म, जाति और रंग के विचार से किसी भारतीय अथवा अंग्रेजी प्रजा में किसी मनुष्य को किसी पद के अयोग्य नहीं समझा जाएगा।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ

लार्ड कार्नवालिस के शासन काल में कुछ अंग्रेजी पादरी बङ्गाल में ईसाई मत के प्रचारार्थ आए। परन्तु उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी किसी ऐसे अंग्रेज को, जिसका कम्पनी से सम्बन्ध न हो, भारत में न आने देती थी। इन पादरियों ने पहले पहल डच लोगों की बस्ती श्रीरामपुर में ईसाई धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया और जब सन १८१३ में पार्लियामेंट ने भारत में ईसाइयों को अपने धर्म के प्रचार की आज्ञा दे दी तब से ये लोग प्रकट रूप से अपना काम करने लगे। इन पादरियों ने सब से पहले भारत-वासियों को अंग्रेजी की शिक्षा देनी आरम्भ की और ये अंग्रेजी पढ़े हुए भारत-वासी कम्पनी की नौकरी करने लगे। सन् १८१३ में पार्लियामेंट ने कम्पनी को आदेश किया था कि वह अपनी आय में से एक लाख रुपया वार्षिक भारत-वासियों की शिक्षा पर व्यय करे। वारेन हेस्टिंग्ज के शासन काल में विल्सन, कोलब्रुक और कुछ दूसरे अंग्रेज हिन्दू धर्म शास्त्र और कानून-सम्बन्धी का अनुवाद कर रहे थे। अदालतों में अंग्रेज जजों की सहायता के लिए मौलवियों और पण्डितों की आवश्यकता थी परन्तु गत शताब्दी के निरन्तर युद्ध के कारण सब पाठशालाएं और दूसरी शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं बन्द हो चुकी थीं और शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले राजा, नवाब और ज़मींदार नष्ट-भ्रष्ट थे। इसलिए अरबी, फ़ारसी, और संस्कृत आदि भाषाओं में शिक्षित व्यक्तियों का मिलना कठिन था।

धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी। परन्तु राजा राम मोहन राय और उनके मतानुयायी यह समझते थे कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर के
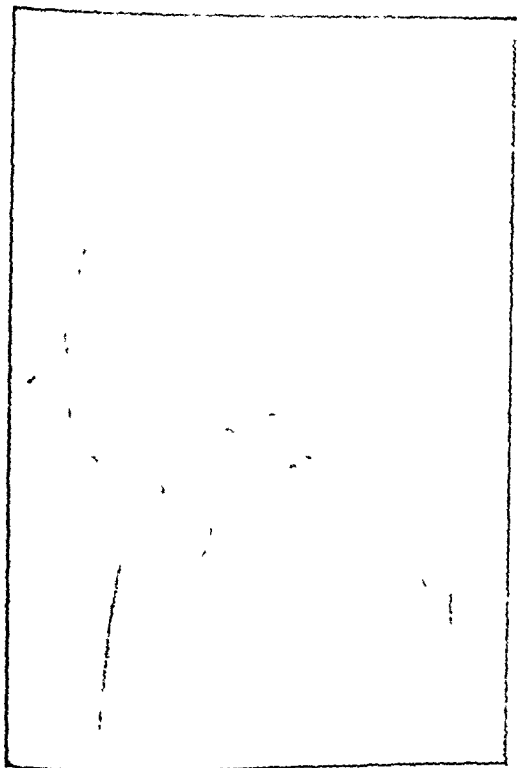
राजा राम मोहन राय

भारतीय अंग्रेजी शासन में नौकरी प्राप्त करने में सफल होंगे और अपने

प्रश्न

१. देश की आर्थिक दशा सुधारने में लार्ड विलियम बेंटिङ्क ने जिन साधनों का प्रयोग किया, उनका वर्णन करो।

२ लार्ड विलियम बेंटिङ्क के समय में अदालतों की क्या दशा थी?

३ सन् १८३३ के चार्टर ऐक्ट (आज्ञा-पत्र) के अनुसार भारतीय शासन पद्धति में क्या परिवर्तन हुए?

४. तुम रेग्युलेटिंग एक्ट १७७३, पिट का इंडिया बिल, चार्टर एक्ट (आज्ञा-पत्र) १८१३ और चार्टर एक्ट १८३३ के सम्बन्ध में क्या जानते हो? अंग्रेजी सरकार ने यह कानून क्यों पास किये? (प० यू० १६१५)

५ लार्ड विलियम बेंटिङ्क के शासन-काल की घटनायें लिखो।

(प० यू० १६१८)

६. अंग्रेजी शिक्षा भारत में कैसे प्रारम्भ हुई?

७. अंग्रेजी सरकार ने पहले पूर्वीय विद्याओं में शिक्षा देने का निर्णय क्यों किया?

८. तुम राजा राम मोहन राय के सम्बन्ध में क्या जानते हो? उन्होंने भारत के लिए क्या क्या किया? (प० यू० १६२८)

६ लार्ड मेकाले के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो। उसने अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में क्या युक्तियां दी थीं।

(प० यू० १६१७)

१०. तुम सती-प्रथा के सम्बन्ध में क्या जानते हो। यह प्रथा किस प्रकार बन्द हुई?

उसने सूबे पर सूबा छीन रहा था और पश्चिम में ईरानी रूसियों की सहायता से हिरात ले कर कन्धार की ओर से उनके साम्राज्य के लिये भय का कारण हो रहे थे। दोस्त मुहम्मद खां को यह भय था कि कहीं इन दो शत्रुओं के बीच में उसका राज्य न जाता रहे। इस विपत्ति से बचने के लिये दोस्त मुहम्मद खां अंग्रेजों की मित्रता चाहता था। अंग्रेजों को स्वयं भी रूस से भय था। वे नहीं चाहते थे कि रूस भारत की सीमा के इतने समीप आ पहुंचे। परन्तु इस विषय में एक और कठिनाई भी थी। दोस्त मुहम्मद खां यह चाहता था कि उसको रणजीतसिंह से पेशावर का इलाका वापस दिलाया जाय, परन्तु लार्ड आकलैंड रणजीतसिंह को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। इसलिये जब दोस्त मुहम्मद खां ने ईरानियों और सिक्खों के विरुद्ध अंग्रेजों से सहायता मांगी तो लार्ड आकलैंड ने उत्तर दिया कि [illegible] अन्य शक्तियों के विषय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। [illegible] मुहम्मद खां किसी न किसी प्रकार पेशावर वापस लेना चाहता था। [illegible] ने रूसियों और ईरानियों से पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। लार्ड आकलैंड यह सहन नहीं कर सकता था कि दोस्त मुहम्मद [illegible] रूस से मित्रता करे, अतः उसने [illegible] [illegible] अंग्रेजी दूत के काबुल पहुंचने के पश्चात् [illegible] गया। इस पर अंग्रेजों ने दोस्त मुहम्मद [illegible] रूसी दूत को लौटा दे पर उन्होंने [illegible] मुहम्मद ने कोई प्रतिज्ञा न की। [illegible] आदरपूर्वक स्वागत किया। [illegible] वापस लौट आया। [illegible] लार्ड [illegible] में एक सन्धि हुई (जिसे Tripartite Tr[illegible]) यह निर्णय हुआ कि दोस्त मुहम्मद [illegible]

शाह शुजा को बिठाया जाए, रणजीतसिंह दर्रा खैबर से एक सहायक सेना काबुल की ओर भेजे और सहायक सेना दर्रा बोलान व कन्धार के मार्ग से काबुल की ओर प्रस्थान करे। इससे पहले कि अंग्रेज और सिक्ख अफगानिस्तान पर आक्रमण करते इंगलैंड की सरकार के दबाव से रूसी दूत काबुल से वापस बुला लिया गया था। ईरानी भी हिरात का घेरा छोड कर अपने देश को चले गए थे। इस प्रकार सीमान्त पर रूसियों की ओर सब आशंका दूर हो चुकी थी परन्तु इन बातों के होते हुए भी लार्ड आकलेंड ने दोस्त मुहम्मद खाँ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अक्तूबर १८३८ में अंग्रेजी सेना अफगानिस्तान को चल पडी और सिन्ध नदी को पार कर के दर्रा बोलान में से होती हुई क्वेटा पहुची और दर्रा खोजक में होकर अप्रैल १८३९ में कन्धार पहुँच गई। उसने कन्धार पर अधिकार कर लिया। कन्धार में शाह शुजा दोबारा गद्दी पर बिठाया गया और अंग्रेजी सेना ने आगे बढ कर गजनी जीत लिया दोस्त मुहम्मद खाँ हार कर बलख को भाग गया और १८३९ में शाह शुजा ने काबुल में प्रवेश किया। सर विलियम मेकनाटन काबुल का रेजीडेंट नियुक्त हुआ। कुछ समय के पश्चात् अंग्रेजी सेना का एक दस्ता भी काबुल से वापस मंगा लिया गया। प्रकट रूप में अंग्रेजों को आशा-नीत सफलता प्राप्त हुई। परन्तु शाह शुजा शासन के योग्य न था और अफगान उससे अप्रसन्न थे क्योंकि वह विदेशीय लोगों की सहायता से वापस आया था। दोस्त मुहम्मद खाँ का पुत्र मुहम्मद अकबर खाँ अभी तक अफगानिस्तान में ही था। उसने शाह शुजा की अयोग्यता और प्रजा की अप्रसन्नता से लाभ उठा कर बहुत से लोगों को अपने साथ मिला लिया। देश में स्थान स्थान पर झगडे होने लगे परन्तु दोस्त मुहम्मद खाँ ने, अपने आपमें सामना करने की शक्ति न पाकर, अपने आपको, अपने बडे पुत्र मुहम्मद अफजल खाँ समेत, अंग्रेजों

किन कारणों से यह लड़ाई आरम्भ हुई ?

(प० यू० १६२४, १६२६, १६३०)

४. बताओ कि पीगू किन परिस्थितियों में अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना ?

५. लेप्स नीति से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? लार्ड डलहौजी ने इस नीति का उपयोग किस भांति किया ? अवध किस भांति अंग्रेजी साम्राज्य में मिला ? लार्ड डलहौजी के शासन-काल का इतिहास लिखो। (प० यू० १६१६, १६२२, १६२४, १६२६, १६२८)

६. गुजरात की लड़ाई भारतवर्ष में क्यों प्रसिद्ध है ?

(प० यू० १६२३, १६२५, १६३०, १६३३)

७. शामसिंह अटारी वाले पर नोट लिखो। (प० यू० १६३१)

८ तेजासिंह और रानी जिन्दा ने भारत के इतिहास में क्या भाग लिया ? (प० यू० १६३२)

९ दीवान मूलराज पर नोट लिखो। (प० यू० १६३२)

१० चिलियांवाला पर नोट लिखो। (प० यू० १६३८)

११ चार्टर एक्ट पर नोट लिखो।

१२. लार्ड डलहौजी के शासन-काल में कौन कौन से कानून बने ?

लार्ड कैनिंग १८५६—१८५८

१८४८ में भारत की राजनीतिक अवस्था पर विहंगम दृष्टि

१८०५ मे लार्ड वेलेजली की विजयों से लेकर १८५७ के सैन्य-विद्रोह तक भारत का इतिहास देखने से पता चलता है कि इस आधी शताब्दी में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी समस्त भारतवर्ष की स्वामिनी हो गई थी। हिन्दू-कुश पर्वत के पार आक्सस नदी से लेकर सुदूर दक्षिण मे रास अन्तरीप तक और पूर्व मे तिनास-रिम और स्याम से लेकर पश्चिम मे सीस्तान तक समस्त भारत-महाप्रदेश अंग्रेजों के चक्रवर्ती साम्राज्य के आधीन हो चुका था। मरहठों की पराजय के पश्चात् जितने युद्ध हुए वे सब अंग्रेज़ी इलाके की सीमाओ पर हुए। इसलिए देश के अन्दर सर्वथा शान्ति का राज्य रहा। जनता मे अंग्रेजी शिक्षा पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति तथा यूरोपियन विचार फैलने लगे। शनै शनै प्राचीन प्रथाएँ और अन्ध विश्वास उठने लगे। जात पात और धर्म इत्यादि की आलोचना खुले रूप से होने लगी। परन्तु भारत जैसे अनुदार देश मे सभ्यता तथा विचारों मे त्वरित गति मे आने वाली क्रान्ति कदापि सुखकारी न हो सकती थी। पुरानी लीक पर चलने वाले कट्टर भारतीय कब नये विचारों और नूतन प्रथाओं को सुगमता से अपना सकते थे। इसलिए जब उन्होंने यह देखा कि सरकार भी नए विचारों के पालन में पुरातन विचारों का ध्यान नहीं रखती तो उन्होंने अप्रसन्न होकर विद्रोह कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य में सरकार ने धार्मिक और सामाजिक विषयों मे, प्रजा का परामर्श लिए बिना, हस्तक्षेप करना बन्द कर दिया। भारत में भी अब ऐसे नेता उत्पन्न हो चुके थे जो आधुनिक युग मे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का ध्यान रखते हुए देश को प्रगति की ओर ले जा सकते थे। राजा राम-मोहन राय, सर सैय्यद अहमद, स्वामी दयानन्द, इन सब ने पूर्वी

ब्रिटिश-शासन के प्रबन्ध में भारत

प्रबन्ध-प्रणाली में सुधार तथा विदेशों से सम्बन्ध

१८५८-१८८०

पन्द्रहवाँ अध्याय

लार्ड कैनिंग १८५८-१८६२

प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार

सैन्य-विद्रोह के पश्चात् शान्ति स्थापित होने पर देश की प्रबन्ध-प्रणाली में कई परिवर्तन किए गए। विद्रोह का प्रारम्भ दिल्ली से हुआ था इसलिए दंड-स्वरूप दिल्ली प्रान्त को दो भागों में विभक्त किया गया। जमुना नदी के पूर्वीय जिले तो आगरा प्रान्त के साथ मिला दिए गए और इस नदी के पश्चिमी जिले पंजाब में सम्मिलित किए गए। अब पंजाब के शासक को चीफ कमिश्नर के बदले लेफ्टिनेंट गवर्नर की उपाधी दी गई।

अदालतें

अब तक देश में दो प्रकार की बड़ी अदालतें थीं। एक तो कम्पनी द्वारा स्थापित की गई दीवानी और फौजदारी की अदालतें और दूसरी इंगलैंड के सम्राट् की ओर से किया गया सुप्रीम कोर्ट। अब समस्त देश सम्राट् के अधीन हो गया, इसलिए इन दो प्रकार की अदालतों की आवश्यकता नहीं थी। इन दोनों को मिलाकर १८६१ में प्रत्येक प्रान्त में राज्य-देशानुसार हाईकोर्ट स्थापित किये गए। इन अदालतों के लिए नए नियम बनाए गए। भारतीय दंड-विधान, जाब्ता फौजदारी तथा जाब्ता दीवानी इत्यादि कानून पास किए गए। बंगाल, बिहार, आगरा और

नागपुर के काश्तकारों के लिये १८५६ में एक कानून बनाया गया (Rent Act) जिससे काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा की गई। इस कानून के अनुसार वे काश्तकार जो बारह वर्ष से एक ही भूमि पर काश्त करते रहे थे पैत्रिक काश्तकार मान लिये गये और अब अदालत की आज्ञा के बिना जमींदार उनके लगान में वृद्धि नहीं कर सकते थे।

नए क़ानून

हम पहले बता चुके हैं कि १८५७ के विद्रोह का एक कारण यह भी था, कि कुछ क़ानून ऐसे बनाये गए थे जिनका सम्बन्ध धर्म से भी था। सर सैयद अहमद का, जो उच्च कोटि के तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक नेता था, यह विचार था कि भारत जैसे देश मे लोगों की इच्छा के विरुद्ध कोई कानून नहीं बनना चाहिये। अतः यह निर्णय किया गया कि भविष्य मे सब कौंसिलों में भारतीय भी सदस्य बनाए जाएँ ताकि कानूनों के बनते समय भारतीयो के विचारों का भी पता चल सके

कौंसिल एक्ट

१८६१ में एक कौंसिल-एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार कौंसिल के सदस्यों की सख्या व्यवस्थापक कौंसिल के सदस्यो के अतिरिक्त १२ नियत हुई और यह निर्णय हुआ कि इनमें मे कम से कम आधे सदस्य गैर-सरकारी हों। अब इन गैर सरकारी सदस्यों मे भारतीय भी नियुक्त हो सकते थे।

आर्थिक सुधार

विद्रोह के पश्चात् सरकार को सबसे बडी कठिनाई, जो सामना करनी पड़ी, आर्थिक दशा थी। विद्रोह के दिनों मे सरकार का बहुत रुपया खर्च आ चुका था और सरकार को इतना ऋण देना हो गया था कि इतना सूद देने में कठिनाई हो रही थी। चार वर्ष में भी १८ करोड का घाटा पडा। कठिनाई को दूर करने के लिए इंगलेंड से सर जेम्ज विलसन और

[illegible] (Import and Export duty) [illegible] लगाया गया। [illegible] और [illegible] हुए।

[illegible] ने कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में [illegible] लिए एक एक विश्वविद्यालय खोला।

विश्वविद्यालयों की स्थापना

इन [illegible] में भारतीय युवक ग्रेजुएट हो [illegible] और आधुनिक युग का शिक्षित [illegible] आरम्भ हुआ। इसके द्वारा देश में पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं दिनों में अंग्रेज़ी [illegible] ने भारत में आकर चाय और कहवा की खेती के लिए सरकार से ज़मीन प्राप्त की।

कैनिंग का स्वभाव

१८६२ में लार्ड कैनिंग भारतवर्ष से चला गया। इसको विद्रोह के दिनों में और इसके पश्चात् इतने परिश्रम से काम करना पड़ा था कि इसका स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो गया था। उसने भारत से १८६२ में प्रस्थान किया था परन्तु इंगलैंड में पहुँचने के कुछ महीने बाद ही उसका देहान्त हो गया। यह भारत का पहला वाइसराय (राजा का प्रतिनिधि) था। यह बड़े दयालु स्वभाव का था। विद्रोह के बाद कुछ अंग्रेज चाहते थे कि भारतीयों से बदला लिया जाए परन्तु उसने उनकी एक न सुनी। इसलिये अप्रसन्न होकर वे लोग इसे दयालु कैनिंग (Clemency Canning) के नाम से पुकारते थे। उसके बाद लार्ड एलगिन भारतवर्ष का वाइसराय नियुक्त हुआ।

के मामले मे कोई हस्ताक्षेप न किया । जब शेरअली गद्दी पर बैठा तो उसने उसे ही अफगानिस्तान का अमीर मान लिया और जब उसके बड़े भाई मुहम्मद अफजल ने उसे काबुल और कन्धार के इलाको से निकालकर इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया तो लार्ड लारेंस ने मुहम्मद अफजल को काबुल तथा कन्धार का अमीर और शेरअली को हिरात का अमीर मान लिया। जब अन्त मे १८६७ मे मुहम्मद अफजल की मृत्यु होगई और १८६६ मे शेरअली ने फिर काबुल और कन्धार पर अधिकार जमा लिया तो लार्ड लारेंस ने उसको फिर अफगानिस्तान का अमीर मान लिया। इस नीति से वाइसराय ने इस बात का प्रमाण दे दिया कि वह अफगानिस्तान के अन्तरीय मामलो मे सर्वथा निष्पक्ष रहेगा और जो कोई भी अपनी शक्ति के बल पर अफगानिस्तान की गद्दी पा लेगा वही अंग्रेज़ी साम्राज्य की ओर से अमीर मान लिया जाएगा ।

अकाल १८६६

लार्ड लारेंस के शासन-काल मे उड़ीसा मे भयंकर अकाल पड़ा। पहले एक वर्ष भर सरकार ने इस अकाल के प्रति कोई प्रबन्ध न किया। व्यापारी लोग ही सब काम करते रहे परन्तु प्रजा मे हाहाकार मच गया। लाखों लोग भूख के दुःख से मृत्यु का ग्रास हो गए। अकालों के रोकने के उपाय सोचने के लिए एक कमीशन बैठाया गया [illegible] अकाल रक्षा-फंड (Famine Insurance Fund) [illegible] ।

रेल और नहरें

लार्ड लारेंस ने अब यह निर्णय किया कि [illegible] और आने जाने के साधनो मे [illegible] । [illegible] तब इन साधनो पर [illegible] था, परन्तु [illegible] था कि इस ओर यथेष्ट उन्नति हो [illegible] । [illegible] ने यह नियम बना दिया कि [illegible]

उसे यह आशा बन्ध गई कि आवश्यकता के समय भारत-सरकार उसकी सहायता करेगी। दूसरी ओर रूस ने भी इंगलेंड को निश्चय दिलाया कि वह अफगानिस्तान को अपने साम्राज्य में मिलाने की इच्छा नहीं रखता।

लार्ड मेयो

आन्तरीय विषयों में लार्ड मेयो के शासन-काल में

आर्थिक सुधार सब से महत्त्व-पूर्ण काम यह हुआ कि उसने प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक स्वातन्त्र्य दे दी। लार्ड मेयो से पहले रुपये-पैसे के समस्त विभाग केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथ में रखे हुये थे और प्रान्तीय सरकारों को खर्च करने के लिये छोटी से छोटी रकम की अनुमति भी भारत-सरकार से प्राप्त करनी पड़ती थी। भारत-सरकार को स्थानीय परिस्थितियों का अधिक ज्ञान न होता था। इसका परिणाम प्रायः यह होता था कि जो प्रान्तीय सरकार अधिक [illegible] सकती थी वह दूसरों से अधिक मात्रा में रुपया ले जाती थी। इस [illegible] के अनुसार भारत सरकार को घाटे का [illegible] देखना पड़ता था और प्रान्तीय सरकारें खर्च के सम्बन्ध में कोई उत्तरदायित्व अनुभव न करती थीं। लार्ड मेयो ने इस पुरानी रीति को हटा कर प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को धन की एक निश्चित रकम देकर उसकी सीमा के अन्दर-अन्दर आय और व्यय का उत्तरदायी बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से मामलों का निर्णय, जो पहिले केन्द्रीय सरकार करती थी, अब प्रान्तीय सरकार करने लगी।

प्राप्त की थी। परन्तु इसके पश्चात् उसके दिल में अपने पुत्र के विरुद्ध ही सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने उसे कैद कर लिया और अपने दूसरे पुत्र जान मुहम्मद को गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। लार्ड नार्थ ब्रुक ने इस सम्बन्ध में उसे एक बड़ी कड़ी चिट्ठी लिखी और इसमें उसको खूब लताड़ा। परन्तु दो वर्ष पश्चात् इंगलैंड में उदार-दल की पराजय हुई और अनुदार दल का जोर बढ़ गया। इस दल का विचार था कि रूस के विरुद्ध अफगानिस्तान से सन्धि करनी चाहिए। इसलिए इस सम्बन्ध में लार्ड नार्थ ब्रुक को पत्र लिखा गया कि वह शेरअली से सन्धि करके काबुल में एक अंग्रेजी दूत भेजे। परन्तु शेरअली अब अंग्रेजों से अप्रसन्न था। वह किसी प्रकार भी अंग्रेजी दूत को काबुल में रहने की आज्ञा न दे सकता था। भारत-सचिव लार्ड सेलिसबरी ने उससे अनुरोध किया कि काबुल में एक अंग्रेज दूत अवश्य नियुक्त किया जाए। लार्ड नार्थ ब्रुक दो ही वर्ष पहले शेरअली से कह चुका था कि रूसियों की ओर से उसे तनिक भी भय नहीं। अब वह शेरअली को किस मुँह से कह सकता था कि अब रूसियों की ओर से भय इतना बढ़ गया है कि अफगानिस्तान में अंग्रेज दूत की उपस्थिति अनिवार्य्य हो गई है। इसी लिए अन्त को उसने १८७६ में त्याग-पत्र दे दिया और इंगलैंड वापस चला गया।

गायकवाड़

लार्ड नार्थ ब्रूक के शासन काल में गायकवाड़-बड़ौदा के राजा मल्हारराव को रियासत में कुप्रबन्ध के कारण सिंहासन से उतार दिया गया और उसके स्थान पर राजवंश में से एक [illegible] बच्चे को सिंहासन पर बिठा दिया गया जो आज भी सिंहासन पर विराजमान है।

इस वाइसराय के शासन-काल में एक [illegible] कालेज [illegible] में, एक लाहौर में, और एक राजकोट काठियावाड़ में [illegible]।

के समस्त राजा और नवाब निमन्त्रित किये गये।

अकाल

सन् १८७८ में दक्षिण में बडे जोर का अकाल पडा। तीन वर्ष सूखा पडा था। मध्य-प्रदेश और संयुक्त-प्रान्त में अन्न की कमी थी। ५० लाख लोग भूखों मर गये। सरकार ने काफी रुपया खर्च किया और प्रजा का दु:ख कम किया। अकाल के विषयों पर जांच करने के लिये एक कमेटी बनाई गई। सर रिचर्ड स्ट्रेची (Sir Richard Stratchy) इसका प्रधान था। कमेटी ने निश्चय किया कि रेलें और नहरें बनाई जाएं जिससे लोग आजीविका कमा सकें और उनकी दशा सुधर सके।

अफ़गानिस्तान की दूसरी लड़ाई १८७८-७९

लार्ड लिटन के शासन-काल की सब से प्रसिद्ध घटना अफ़गानिस्तान की दूसरी लड़ाई है। हम ऊपर बता आए हैं कि भारत-सचिव लार्ड सेलिसबरी का यह मत था कि यदि अमीर शेरअली काबुल में अंग्रेज़ दूत के ठहरने की आज्ञा न दे और अंग्रेज़ों के साथ सन्धि करने से इनकार कर दे तो उसे शत्रु समझा जाए। वह चाहता था कि कन्धार और हिरात की एक पृथक् रियासत बना दिया जाए और बिलोचिस्तान पर [illegible] बनाकर बोलन और दर्रा खोजक की रक्षा के लिये क्वेटा में [illegible] डाल दी जाय। लार्ड लिटन ने भी इसी नीति का [illegible] किया। [illegible] रूस का दूत काबुल पहुंच गया तो उसने भी एक [illegible] दूत काबुल को भेज दिया। शेरअली ने [illegible] सर नेविल चेम्बरलेन (Sir Neville Chamberlain) को [illegible] दिया। इस पर लार्ड लिटन ने युद्ध की घोषणा कर दी। [illegible] ने काबुल पर चढ़ाई करके अधिकार जमा लिया। [illegible] पर रूसी इलाके में [illegible] लिया और वहीं [illegible] सरकार ने शेरअली के बड़े बेटे याकूब खां से १८७९ में [illegible]

इस शासनकाल के समय में शिक्षा के सम्बन्ध में एक जांच कमेटी भी नियुक्त की गई। गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता देने की रीति पहले पहले लार्ड रिपन ने ही चलाई। १८८२ में पंजाब विश्व-विद्यालय की नींव रखी गई।

शिक्षा

परन्तु लार्ड रिपन के सुधारों में सब से मुख्य और प्रसिद्ध सुधार यह है कि उसने भारत में लोकल सेल्फ गवर्नमेंट का बीज बोया। देहात, नगर और कस्बों के स्थानीय मामलों के प्रबन्ध के लिए उसने जिला बोर्ड और म्युनिसिपेलिटियाँ स्थापित कीं। १८८३ में जिला बोर्ड-एक्ट और १८८४ में म्युनिसिपल एक्ट पास हुआ। ज़िला बोर्ड एक्ट के अनुसार प्रत्येक जिले के लिए एक ज़िला-बोर्ड स्थापित किया गया। इन बोर्डों में कुछ सदस्य जनता की ओर से चुने जाते हैं और कुछ सरकार की ओर से नियुक्त होकर आते हैं। ज़िलों के अन्दर सड़कों, अस्पतालों, स्कूलों इत्यादि का प्रबन्ध इन बोर्डों को सौंपा गया। इसी प्रकार कस्बों और नगरों में भी स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों, गलियों और बाजारों की सफाई आदि का प्रबन्ध इन कमेटियों पर डाला गया। इन बोर्डों और कमेटियों को ये भी अधिकार दिये गए कि इन विभागों का खर्च चलाने के लिए वे अपने कस्बे, नगर व जिला की सीमा के अन्दर कुछ कर लगा लें। इन सुधारो से लोगो को यह पहली बार अवसर मिला कि देश के प्रबन्ध में वे भी भाग लें। इससे जनता को राजनीति तथा देश के प्रबन्ध मे कुछ ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त हो सकता था।

लोकल सैल्फ गवर्नमेंट

लार्ड रिपन भारत-सरकार की धारा-कौंसिल के कानूनी सदस्य मि० इलबर्ट द्वारा एक बिल पेश कराया जिसका उद्देश्य यह था कि भारत मे यूरोपियन लोगों के अभियोगो की सुनवाई भी भारतीय मेजिस्ट्रेट ही किया करें। अंग्रेज़ों ने इस बिल की कडी आलोचना की।

इलबर्ट बिल १८८३

भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि
१७७२–१८९२

नेपाल

आसाम
१८२५

उतरी बर्मा
१८८५

बिहार
१७७२

बंगाल
१७७२

बुंदेलखंड

उडीसा
१८०३

नागपुर
१८५३

पीगू
१८५३

मदरास
१८४०

हीं को था कि अमीर ने शान्तिमय रीति से इस उलझन को सुलझा दिया। नहीं तो सम्भव था कि अंग्रेज़ों और रूसियों में लड़ाई ठन जाती।

बर्मा की तीसरी लड़ाई १८८५-१८८६

इस वाइसराय के समय में बर्मा की तीसरी लड़ाई हुई। राजा थीबो ने फ्रांसीसियों को विशेष व्यापारिक अधिकार देकर उनसे मित्रता स्थापित करने का यत्न किया। लार्ड डफरिन ने निर्णय कर लिया कि वह बर्मा में फ्रांसीसियों को पांव न जमाने देगा। अतएव उसने यह निश्चय किया कि उत्तरी-बर्मा भी अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया जाये। नवम्बर १८८५ में केवल दो सप्ताह के युद्ध के पश्चात् राजा थीबो ने अस्त्र डाल दिये। उसे बन्दी करके बम्बई प्रान्त में रत्नगिरि भेज दिया गया जहां उसने अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत किए। उत्तरी-बर्मा अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

कांग्रेस

इसी वर्ष १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का सूत्रपात हुआ। भारतीय विश्वविद्यालयों को शिक्षा देते हुए २८ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। भारतीयों में अब एक पीढ़ी से अधिक काल से अंग्रेजी शिक्षा दी जा रही थी। कालेजों और स्कूलों में भारतीयों ने अंग्रेजी इतिहास, पश्चिमी सभ्यता और यूरोपियन शासन-पद्धति का अच्छा अध्ययन कर लिया था। अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों में अब राष्ट्रीयता का भाव जोर पकड़ रहा था। उनके हृदयों में यह भाव दृढ़ होता था कि भारतीयों को भी अपने देश के प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार होना चाहिये। कई सहृदय अंग्रेज़ भी उनके इस भाव से सहानुभूति रखते थे। इन्होंने दादा भाई नारोजी, उमेशचन्द्र बेनर्जी आदि कुछ भारतीयों ने और ए० ओ० ह्यूम जैसे अंग्रेज़ों ने मिलकर इण्डियन नेशनल कांग्रेस की नींव रक्खी। इसका प्रथम अधिवेशन बम्बई में दिसम्बर १

इस कमीशन के निर्णयानुसार सीमा निश्चित करते समय चितराल, बाजोड, दीरा स्वात, बुनेर और अफरीदियो, मुहमन्दो, वज़ीरियो तथा महसूदो के इलाक़े अफगानिस्तान से स्वतन्त्र और भारत-सरकार के अधीन समझे गये। क्योकि यह सीमा निश्चित करने वाली कमीशन के नेता लार्ड डयूरेंड थे इसलिये इसे 'डयूरेंड लाइन' भी कहा जाता है। लार्ड लैन्सडाऊन के शासन-काल में पहले पहल इम्पीरियल-सरविस ट्रुप्स सम्राट् की सेवा के लिये रियासतो की सेना बनाई गई थीं।

मनीपुर का विद्रोह

१८९१ में मनीपुर मे विद्रोह हो गया था और रियासत के सेना-नायक ने कुछ अंगरेज अधिकारियो को धोखे से मरवा डाला था। इसलिए रियासत पर चढाई की गई। अपराधियो को यथेष्ट दण्ड दिया गया और गद्दी पर सिंहासन के अधिकारी एक अल्प वयस्क बच्चे को बिठाकर रियासत का प्रबन्ध कुछ वर्षो के लिये अंग्रेज़ अफसरो को सौप दिया गया।

इसी समय सरकार ने रुपये के दर की ओर अपना ध्यान दिया।

सिक्का

१८७१ से जब से कि यूरोपियन देशो में चान्दी का सिक्का हटा दिया गया था और सोने का सिक्का चलाया था, चान्दी का मूल्य बहुत घट गया था। भारत मे चान्दी का सिक्का था भारत को माल के क्रय-विक्रय में और विदेशो के ऋण मे सोने का सिक्का देना पडता था। इसलिये सरकार को सोने के सिक्को के बदले अधिक सख्या में चांदी के सिक्के देने पडते थे। १८७१ मे दो शिलिंग मिलते थे परन्तु अब चांदी सस्ती हो जाने से रुपए मे एक शिलिंग और एक पेंस मिलता था। अन्त में १८९३ मे लार्ड लैंसडाउन ने यह निर्णय किया कि रुपये का दर प्रति रुपया एक शिलिंग चार पेंस नियत किया जाए और भारत में सोने का सिक्का भी उचित सिक्का समझा जावे। यह दर यूरोप के महायुद्ध तक रहा।

पुन: बिठाया गया और प्रबन्ध के लिए रियासत में अंग्रेजी सेना नियुक्त की गई। परन्तु कुछ ही देर बाद सीमान्त पर फिर झगड़े आरम्भ हो गए। उत्तरीय वज़ीरिस्तान में वज़ीरियों ने एक राजनीतिक अधिकारी को मार डाला और एक मुल्ला ने अंग्रेजों के विरुद्ध जहाद करने का फत्वा दे दिया। अफ़रीदी, वज़ीरी और महसूद इत्यादि पहाड़ी जातियों के पठानों ने सिर उठाया। उनके दमन के लिए एक सेना भेजी गई। यह जातियाँ दुर्गम पहाड़ी घाटियों में रहती थी, इसलिए सेना को सफलता प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सन् १८९८ के पहले सीमान्त पर शान्ति स्थापित न हो सकी। अन्त को समस्त उद्दंड जातियों ने युद्ध का हर्जाना देकर और बहुत सी बन्दूकें अंग्रेज़ों को सौंपकर अधीनता स्वीकार कर ली।

प्लेग इस वाइसराय के शासन-काल में १८९६ में भारत में प्लेग फैल गई। १९०३ के अन्त तक २ लाख स्त्री-पुरुष इस महामारी द्वारा मृत्यु का ग्रास बन गए। जहाँगीर के समय में भी प्लेग फैली थी। 'तुज़क जहाँगीर' में लिखा है कि प्लेग चूहों से फैलती है।

अकाल इसी समय संयुक्त प्रान्त, मध्य-प्रदेश, बिहार और पंजाब में भारी अकाल पड़ा। व्यापार बढ़ाने के लिए पक्की सड़कें, रेलें, नहरें इत्यादि बनवाई गईं। अनेक लोगों को इस प्रकार जीविका का कुछ साधन मिल गया।

लार्ड कर्ज़न १८९९—१९०५

लार्ड कर्ज़न लार्ड डलहौजी की भाँति एक दृढ़-प्रतिज्ञ, उद्यमी और बुद्धिमान व्यक्ति था। वह चाहता था कि प्रत्येक विभाग का काम भली-भाँति चलना चाहिए।

सीमान्त का प्रश्न जिस समय लार्ड कर्ज़न भारतवर्ष आया उस समय अभी सीमान्त पर गड़-बड़ न हटी थी। इसलिए उसने सब से

तिब्बत की चढ़ाई

१९०४ में लार्ड कर्जन ने तिब्बत के विरुद्ध सेना भेजी। उस समय यह शंका की जाती थी कि तिब्बत वाले रूस से मिल कर षड्यन्त्र कर रहे हैं और भारत के व्यापार में रुकावटें डालते हैं। भारत सरकार ने तिब्बत के शासक दलाईलामा को कई चिट्ठियाँ भेजीं परन्तु उनका कोई उत्तर न आया। अन्त में कर्नल यंग हस्बेंड की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया और तिब्बत की राजधानी ल्हासा पर अधिकार कर लिया। वहाँ एक सन्धि की गई जिसके अनुसार तिब्बत में अंग्रेजों के व्यापारिक अधिकारों को स्वीकार किया गया और अंग्रेजों ने यह मान लिया कि तिब्बत चीन साम्राज्य के अन्तर्गत है।

फारिस

लार्ड कर्जन ने फारिस की खाड़ी का भी दौरा किया और मसकत और अम्मान के सुलतानों से सन्धियाँ कीं।

प्रबन्ध-सम्बन्धी सुधार

लार्ड कर्ज़न का युग सुधारों का युग है। उसने कमीशनों द्वारा शिक्षा सम्बन्धी सुधारों की रीति चलाई। पुलिस के वेतन बढ़ा कर इस विभाग को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया। कृषि की उन्नति के लिए कृषि-विभाग का भावी कार्यक्रम भी तैयार किया गया। उसने कृषकों को साहूकारों के पंजे से छुड़ाने के विचार से एक ऐसा कानून बनाया जिससे साहूकार ऋण के बदले काश्तकार की जमीन न ले सकें। काश्तकारों और जमींदारों की सहायता के लिए देश में जमींदारा बैंक खोले गये। रईसों के लड़कों को सैनिक शिक्षा देने के लिए क्वेटा में इम्पीरियल कैडेट कोर स्थापित की गई। प्राचीन साहित्यिक इमारतों की रक्षा के लिए एक पृथक् विभाग बनाया गया। भारत में प्राचीन सभ्यता के निशान बहुत संख्या में मिलते हैं। इनके द्वारा भारत के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ता है। लार्ड कर्ज़न ने

कर्ज़न का त्याग-पत्र

व्यवस्थापक कौंसिल में एक फौजी सदस्य रखने के प्रश्न पर झगड़ा हो गया। भारत-सचिव ने भी इस मामले में लार्ड किचनर का समर्थन किया। इसलिये लार्ड कर्ज़न ने १९०५ में त्याग पत्र दे दिया और इंगलैंड वापस चला गया।

प्रश्न

१. १८८० से १९०५ तक भारत और अफगानिस्तान में सम्बन्ध कैसा रहा?

२. लार्ड लैनडाउन, लार्ड एलगिन और लार्ड कर्ज़न के शासन-काल की घटनाओं पर और विशेष रूप से उनकी सीमान्त-सम्बन्धी नीति पर एक संक्षिप्त परन्तु विवेचनात्मक नोट लिखो। (प० यू० १९११)

३. इस युग में भारत सरकार ने कृषकों के लिये क्या किया?

४. इस युग में जो शिक्षा की उन्नति हुई उस पर नोट लिखो।

५. लार्ड रिपन और लार्ड डफरिन के शासन काल की घटनाओं का उल्लेख करो।

६. लार्ड कर्ज़न के शासन-काल की घटनाएँ बताओ।

(प० यू० १९०६, १९१०, १९१८)

७. आने-जाने के साधनों के सुगम बनाने का भारत की [illegible] पर क्या प्रभाव पड़ा? (प० यू० ९१[illegible])

८. लार्ड किचनर पर नोट लिखो। (प० यू० [illegible])

९. इंडियन नेशनल कांग्रेस पर नोट लिखो। (प० यू० [illegible])

१०. भारत की शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति के [illegible] जानते हो? (प० यू० ९१९)

११. नमक के कर पर नोट लिखो। (प० यू० [illegible], १९१८)

१२. १८९२ के वैधानिक सुधारों पर नोट लिखो।

क़ानून बनाए। सन् १८१८ एक्ट के अनुसार कुछ लोग कालेपानी भेजे गए। इसी समय विस्फोटक पदार्थ एक्ट (Explosives Act), विद्रोह मीटिंगो के रोकने का एक्ट (The Prevention of Seditious Meetings Act) और फौजदारी कानून सुधार (Criminal Law Amendment Act) बनाए गए जिनमें विद्रोहात्मक लेखों के निषेध का विशेष ध्यान रखा गया।

लोगो को शान्त करने लिए इस वाइसराय के शासन काल में भारत की शासन पद्धति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए।

कौंसिल सुधार ये सुधार मिन्टो-मार्ले सुधार (Minto Morley Reforms) के नाम से प्रसिद्ध है। १६०६ मे भारत-सचिव की इंडिया कौंसिल मे पहली बार दो भारतीय सदस्य नियुक्त हुए। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों की व्यवस्थापक कौंसिलो म भी एक भारतीय सदस्य नियुक्त हुआ। इस के अतिरिक्त धारा सभाओ (Legislative councils) के चुनाव मे भी बहुत से परिवर्तन कि गए। १८६२ मे वाइसराय की कौंसिल के १६ सदस्य थे। उनकी सख्या अब बढा कर ६० कर दी गई जिनमे २८ सरकारी और ३२ गैर सरकारी नियुक्त हुए। प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यो की सख्या भी बढ़ा दी गई और उनमे गैर सरकारी सदस्यों की सख्या अधिक रखी गई। परन्तु वाइसराय की कौंसिल मे सरकारी मेम्बरो की अधिक सख्या रही। इन सुधारो में साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त (Communal representation) भी चलाया गया। प्रत्येक कौंसिल में मुसलमानों, जमींदारों और व्यापार-मडलों को पृथक् पृथक् प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। इन कौंसिलो के अधिकारों में भी वृद्धि की गई। १८६२ के सुधारो से कौंसिल के सदस्य केवल प्रश्न और

व्यय पर वाद-विवाद ही कर सकते थे परन्तु अब इन कौंसिलों को यह भी अधिकार दे दिया गया कि प्रस्तावों द्वारा बजट की आलोचना भी कर सकें और यदि ये प्रस्ताव पास हो जाएँ तो इन नए सुधारों के अनुसार सरकार को कारण बताना पड़ेगा कि पास किए हुए प्रस्तावों को कार्य-स्वरूप में क्यों परिणत नहीं किया गया। सरकार के साधारण प्रबन्ध-सम्बन्धी मामलों पर भी प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया। इन सुधारों से यद्यपि प्रान्तीय कौंसिलों में जनता के प्रतिनिधियों को यह अधिकार तो मिल गया कि सरकार की कार्यवाही की आलोचना कर सकें परन्तु गैर-सरकारी सदस्यों को शासन के संचालन में कोई उत्तरदायित्व न दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में राजनीतिक अशान्ति अधिक फैल गई और देश-प्रेम का आन्दोलन और जोर पकड़ा गया। अब कॉंग्रेस में भी दो दल बन गए। माडरेटस (moderates) तो इन सुधारों को पर्याप्त समझते थे परन्तु ऐक्सट्रीमिस्टस (extremists) उनको बहुत कम और असंतोष-जनक समझते थे।

जार्ज पञ्चम — १९१० में सम्राट् एडवर्ड सप्तम का देहान्त हो गया, और उसका पुत्र सम्राट् जार्ज पञ्चम सिंहासन पर बैठा।

लार्ड हार्डिङ्ग दूसरा १९१०--१९१६

१९१० के अन्त में लार्ड हार्डिङ्ग वाइसराय नियुक्त होकर आया। यह उस लार्ड हार्डिङ्ग का पोता था जिसके शासन-काल में सिक्खों की पहली लड़ाई हुई थी। उसके वाइसराय बनने के थोड़े ही समय बाद १२ दिसम्बर सन् १९११ में दिल्ली में तीसरा राज-दरबार बड़े समारोह से हुआ। इस बार सम्राट् जार्ज पञ्चम, सम्राज्ञी मेरी

राज दरबार १९११ और नए विधान

ग्रीस में भारतीय सेना
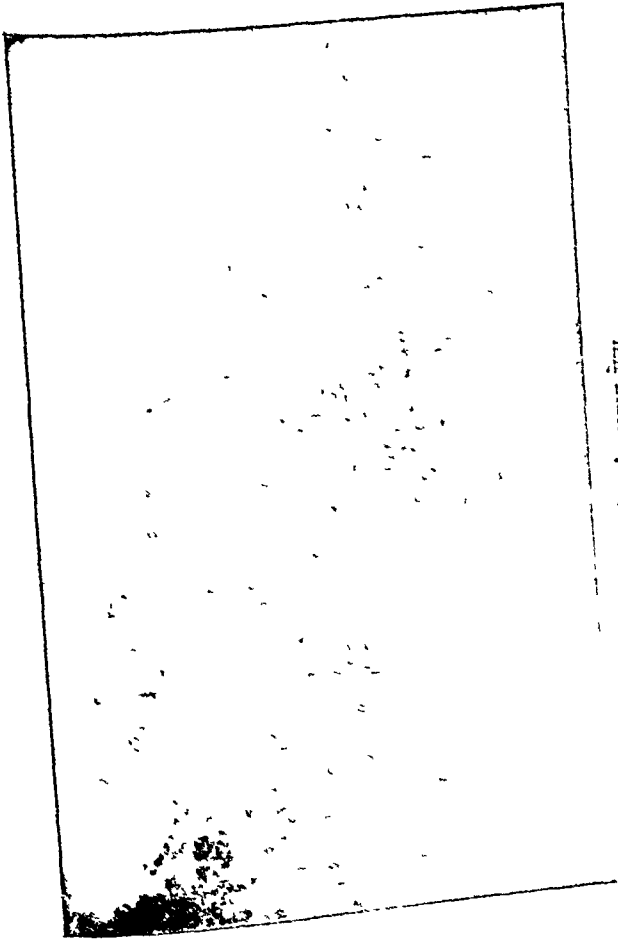
के समस्त विभाग भारतीय मन्त्रियों को सौंपे गये। भूमि का कर, पानी का लगान, नहर, पुलिस, जंगल, दीवानी और फौजदारी की अदालतें, जेलखाने और शासन-प्रबन्ध के सब विभाग गवर्नरों की कौंसिलों के अधीन ही रखे गये। इस शासन-व्यवस्था को डायरकी (Diarchy) कहा जाता है। नए सुधारों के अनुसार यह भी निर्णय किया गया कि प्रत्येक प्रान्तीय कौंसिल के सदस्यों में से ७५ प्रतिशत निर्वाचन (election) द्वारा चुने जाएं। मन्त्री कौंसिलों के अधीन रहें और यदि कोई कौंसिल किसी मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का वोट पास कर दे तो उस मन्त्री के लिये यह आवश्यक होगा कि वह अपने पद से त्याग पत्र दे दे। उन विभागों में जो कौंसिलों से सुरक्षित रखे गये थे सरकार को अधिकार दिया गया कि वह कौंसिल के निर्णय के विरुद्ध कार्यवाही करे परन्तु आय-व्यय के सब बजटों का प्रान्तीय कौंसिलों में पास होना आवश्यक हो गया।

प्रान्तीय सरकार

इन सुधारों के साथ ही सरकार की आय के साधनों को भी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में विभक्त किया गया। वस्तुओं के आने और जाने पर कर (Import and Export duty), इनकम टेक्स, नमक, रेल डाक, तार, अफीम की आय, केन्द्रीय सरकार को सौंपे गये। भूमि कर, नहरों का कर, जंगल, आबकारी, स्टैम्प, तथा कोर्ट फीस और रजिस्टरी आदि विभागों की आय प्रान्तीय सरकार के अधिकार में रखी गई। इन सुधारों से पहले भूमि-कर, नहरों का कर स्टैम्प, कोर्ट-फीस इत्यादि कई विभागों की आय केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में बराबर बराबर विभक्त होती थी, परन्तु इन नये सुधारों से दोनों सरकारों की आय के साधन पृथक् पृथक् हो गये। पहले केन्द्रीय सरकार कई विषयों में प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक सहायता भी देती थी परन्तु अब आर्थिक सहायता की इस प्रणाली का अन्त कर दिया गया।

कई बार पुलिस से भी मुठभेड़ होती रही। परन्तु अन्त में इसका मनोरथ सफल हुआ। अब सब गुरुद्वारे इसी कमेटी के प्रबन्ध में हैं।

लार्ड चेम्सफोर्ड के स्थान पर लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर भारत आया।

प्रश्न

१. १९०१ के पश्चात् भारत-सरकार से अफगानिस्तान का कैसा सम्बन्ध रहा? (पं० यू० १९२४, १९२९, १९३०)

२ इस समय मे सीमान्त की जातियों के साथ भारत-सरकार का सम्बन्ध कैसा रहा?

३. सम्राट् अमान-उल्लाह पर नोट लिखो। (प० यू० १९३३)

४. भारत ने यूरोप के महायुद्ध मे क्या भाग लिया।
(प० यू० १९२८)

५. १९११ के दिल्ली-दरबार पर नोट लिखो।
(प० यू० १९२४, १९२६)

६. १९१९ में मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफार्म स्कीम द्वारा भारत की शासन-पद्धति में क्या-क्या सुधार हुए?

७ १९०९ द्वारा दिए गए मिण्टो-मार्ले रिफार्म स्कीम के सुधार वर्णन करो।

८ लार्ड मिण्टो दूसरे के शासन-काल की घटनाओं का वर्णन करो।

९. डायरकी (Diarchy) से तुम क्या समझते हो?

[illegible] । परन्तु साधारणतया रुकावट [illegible] । सरकार का काम पूर्ववत् [illegible] ।

अर्ल आव रीडिंग
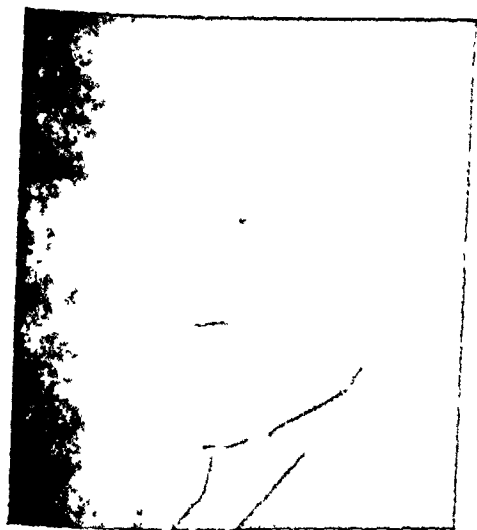
नाभा, होल्कर और भरतपुर

सन् १९२३ मे नाभा और पटियाला के राज्यों में झगडा शुरू हो गया । मामला भारत सरकार के पास गया । इस झगडे का परिणाम यह हुआ कि नाभा-नरेश ने गद्दी से त्याग पत्र दे दिया । उसके स्थान पर उसके लड़के को गद्दी पर बिठाया गया । १९२५ मे महाराज होल्कर को गद्दी से हटाया गया और १९२६ में भरतपुर के राजा को ।

लार्ड रीडिंग की अवधि १५२६ में समाप्त हुई और उसके स्थान पर लार्ड अर्विन वाइसराय नियुक्त हुआ।

लार्ड अर्विन १९२६ १९३१

लार्ड अर्विन उस सर चार्लस वुड का पोता था जिसने १८५४ मे भारत मे शिक्षा विभाग का सूत्रपात किया था और

कृषि कमीशन

जिसने १८५७ के विद्रोह के पश्चात् नव विधान सम्बन्धी ऐक्ट पार्लियामेंट से पास कराया था। इस वाइसराय के शासन-काल के रम्भ मे एक राजकीय कृषि-कमीशन (Royal Agricultural Commission) इस अभिप्राय से नियुक्त की गई कि जमींदारों, काश्तकारों और देहातियों की उन्नति के साधनों पर विचार किया जाए। इस कमीशन के प्रधान लार्ड लिनलिथगो थे, जो इस समय भारत के वाइसराय है। कमीशन ने १६२७ में अपनी रिपोर्ट पेश की। पजाब के प्रसिद्ध दानवीर सर गगाराम इस कमीशन के सदस्य थे। इनका देहान्त इंगलैंड में ही कमीशन की रिपोर्ट लिखने के समय हो गया।

साइमन कमीशन

१६२७ के अन्त मे इंगलैंड की सरकार ने एक और राजकीय कमीशन भारत की शासन-पद्धति की जांच करके नए सुधारो के सम्बन्ध मे रिपोर्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की। सर जान साइमन इस कमीशन का प्रधान था। इस कमीशन के सातों सदस्य अग्रेज़ थे, भारतीय सदस्य कोई भी न था। इसलिये समस्त भारत मे अप्रसन्नता की लहर दौड गई। इस कमीशन का बाईकाट किया गया।

स्वराज्य-पार्टी

इस वाइसराय के समय में स्वराज्य पार्टी दो दलों में विभक्त होगई। एक वास्तविक स्वराज्य-पार्टी और दूसरी सहयोग के बदले सहयोग करने वाली पार्टी। १६२६ के चुनाव में दोनों दलों के सदस्य धारा-सभाओ के निर्वाचन मे सफल हुए।
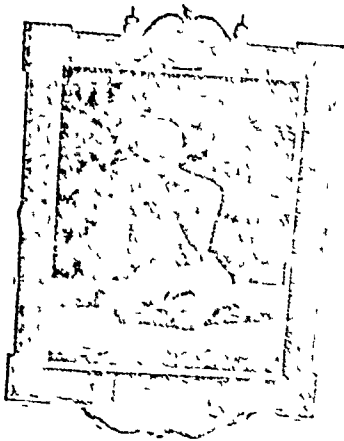
महात्मा गान्धी
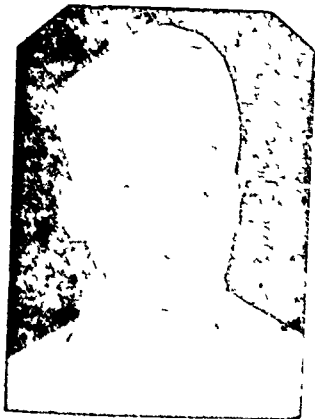
पण्डित मदनमोहन मालवीय

बहुत धक्का पहुँचा। हज़ारों की संख्या में लोग जेल में चले गए। इस बीच ही मे इगलैंड मे अनुदार-दल की हार हो गई। १६२६ मे शासन की बागडोर मजदूर-पार्टी के हाथ आई। १६३० मे समझौते के लिए बातचीत चली। सरकार की ओर से घोषणा की गई कि भारत के शासन-विधान का निर्णय करने के लिए एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस (Round Table Conference) लन्दन में बुलाई जाएगी जिसमें प्रत्येक जाति अथवा सम्प्रदाय के भारतीय सम्मिलित किए जाएँगे। कांग्रेस को भी निमन्त्रण दिया गया कि वह भी इस वर्ष कान्फ्रेंस मे सम्मिलित हो। परन्तु समझौता न हो सका और गोलमेज कान्फ्रेंस कांग्रेस के बिना ही लन्दन मे हुई। जनवरी १६३१ में इगलैंड के प्रधान मन्त्री की घोषणा

लार्ड विलिङ्गडन १६३१-१६३६

तीसरी गोलमेज कांफ्रेंस और गवर्नमेंट आव इण्डिया एक्ट

लार्ड अर्विन के वापस जाने पर, लार्ड विलिङ्गडन वाइसराय होकर भारत आया। यह पहले भी दस वर्ष तक बम्बई और मद्रास के गवर्नर के रूप में भारत में रह चुका था। इसलिये भारत की राजनीति से भली-भाति परिचित था। इसके शासन-काल के पहले ही वर्ष इंगलैंड की पार्लियामेंट का नया चुनाव हुआ और उसमे मजदूर-पार्टी हार गई और उसके स्थान पर एक मिश्रित राष्ट्रीय मन्त्रि-मण्डल बनाया गया। हाऊस आव कामन्ज (House of Commons) मे अब फिर अनुदार-दल बहु-सख्या मे पहुँचा गया। अब भारत को वह अधिकार मिलने की आशा दूर चली गई जो मजदूर-पार्टी के शासन काल मे मिलने सम्भव थे। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस मे महात्मा गान्धी भी कांग्रेस की ओर से सम्मिलित हुए थे। वे असफल वापस आये। १६३२ मे इंगलैंड की सरकार ने यह निर्णय कर दिया कि भारत की धारा-सभाओं में भविष्य मे भी साम्प्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केन्द्रीय सरकार की नौकरियों मे भी साम्प्रदायिक चुनाव जारी रहेगा। इसके कुछ देर बाद केन्द्रीय सरकार की नौकरियों मे भी साम्प्रदायिकता स्थापित कर दी गई। इस पर सिक्खों और हिन्दुओं की ओर से बडा विरोध हुआ। जब कांग्रेस ने देखा कि नव-विधान उनकी आशा के अनुसार नहीं तो उसने भी सरकार का विरोध आरम्भ कर दिया। १६३२ में लन्दन मे तीसरी गोलमेज कांफ्रेंस हुई और उसमें नव-विधान के सब नियम बनाए गये। इसके बाद गोलमेज कांफ्रेंस की रिपोर्ट के आधार पर एक कानून तैयार किया गया जो इंगलैंड की पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी (Select Committee) को सौंपा गया। अन्त मे बहुत वाद-विवाद के पश्चात् १६३५ में इंगलैंड की पार्लियामेंट ने गवर्नमेंट आव

से होगा वही प्रधान-मन्त्री निर्वाचित किया जाएगा और उसे ही अपना मन्त्री-मण्डल बनाने का अधिकार होगा। युद्ध-विभाग, विदेशी मामले और भारतीय रियासतों के मामलों को छोड़कर शेष सारे विभाग इन्हीं मन्त्रियों के अधीन होंगे। यदि किसी मामले में मन्त्री-मण्डल की कार्यवाही को भारतीय पार्लियामेंट अस्वीकार कर देगी तो मन्त्री-मण्डल को त्याग-पत्र देना पड़ेगा। यहाँ पर भी प्रान्तीय सरकारों की भाँति वाइसराय को अपने विशेष अधिकारों को प्रयोग मे लाने का अधिकार होगा। उसे यह भी अधिकार होगा कि भारत की आर्थिक स्थिति ठीक रखने के मन्त्रियों के काम मे हस्ताक्षेप करे। रेलों के प्रबन्ध के लिए पृथक् बोर्ड बन गया है जिसको स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त होंगे। करेंसी-नोट भी अब सरकार जारी न करेगी। यह अधिकार रिज़र्व बैंक को दे दिया गया है। सरकार के कोष और उसके कर्ज़ों का प्रबन्ध भी यह रिज़र्व बैंक ही करेगा। इन नए सुधारो से भारतीय रियासतों को भी भारत के शासन मे मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। अब अंग्रेज़ी इलाके और भारतीय रियासतों के संगठन द्वारा भारत के नव-विधान को सफल बनाने का प्रयास होगा और नवीन भारत की नींव स्थापित होगी।

नए प्रान्त

नव-विधान द्वारा सिन्ध बम्बई प्रान्त से अलग करके एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया है। उड़ीसा बिहार से अलग होकर एक पृथक् प्रान्त बन गया है। इसके अतिरिक्त इसी समय से अदन भी भारत से पृथक् हो गया है। अब यह प्रदेश भारत-सरकार के अधीन नहीं रहा बल्कि सीधे इंगलैंड के अधीन एक उपनिवेश की भाँति होगया है। बर्मा भी भारत से पृथक् कर दिया गया है।

सम्राट् जार्ज की मृत्यु

२१ जनवरी १६३६ को सम्राट् जार्ज पञ्चम कुछ दिनो की बीमारी के पश्चात् परलोक सिधार गये। इस पर उनका ज्येष्ठ पुत्र एडवर्ड, जो प्रिंस आव वेल्ज़ के नाम से प्रसिद्ध था, सिंहासन पर बैठा और उसने एडवर्ड अष्टम की

एडवर्ड अष्टम का सिंहासन त्याग और जार्ज छठे का राज्याभिषेक

१६३६ में सम्राट् एडवर्ड अष्टम का शासन-काल आरम्भ होकर समाप्त होगया। कुछ देर से सम्राट् का एक अमरीकन महिला श्रीमती सिम्पसन से प्रेम होगया था। श्रीमती सिम्पसन बाल्टीमोर अमरीका में उत्पन्न हुई थी। उसका पहला विवाह १६१६ में एक अमरीकन जङ्गी बेड़े के अफसर से हुआ था परन्तु १६२६ मे उसने अपने पति से तलाक ले लिया। इसके पश्चात् वह इंगलैंड आई और वहां १६२७ मे उसने मि० सिम्पसन से विवाह कर लिया। यह व्यक्ति एक जहाजों की कम्पनी का हिस्सेदार है। यहां पर इस अमरीकन महिला की भेंट एडवर्ड प्रिंस आव वेल्ज से हुई। शनैः शनैः उनमे मित्रता हो गई और यह मित्रता प्रेम मे परिणत हो गई। अक्तूबर १६३६ में इसने अपने दूसरे पति से भी तलाक प्राप्त कर लिया। नवम्बर १६३६ में सम्राट् एडवर्ड ने श्रीमती सिम्पसन से विवाह करने की इच्छा प्रकट की परन्तु इंगलैंड के आर्क-बिशप आव केन्टरबरी (Archbishop of Canterbery) और आर्क-बिशप आव यार्क (Archbishop of York) दोनों ने इस विवाह का विरोध किया। आपत्ति यह थी कि इंगलैंड जैसे महान् साम्राज्य के सम्राट् के लिये यह उचित नहीं कि वह एक ऐसी स्त्री से विवाह करे जिसके पहले दो पति जीवित हों और जिसका सम्बन्ध एक बहुत छोटे वंश से हो। सम्राट् एडवर्ड अष्टम यह बात स्वीकार करते थे कि विवाह होने पर मिस सिम्पसन को महारानी न [illegible] और इस बात के लिये पार्लियामेंट में एक नया क़ानून पास किया [illegible]। परन्तु इंगलैंड के मन्त्री इस घटिया दर्जे के विवाह को स्वीकार करने के लिये क़ानून पास करने को तैयार न हुए। इंगलैंड के [illegible] इस प्रकार के विवाह के विरुद्ध थे और न ही यह [illegible]

में करने के लिये तयार थे। अन्त को सम्राट् एडवर्ड ने गद्दी से त्याग-पत्र दे दिया और १० दिसम्बर १६३६ को ३२५ दिन के राज्य के बाद एडवर्ड अष्टम का शासन-काल समाप्त हुआ और उनके छोटे भाई ड्यूक आव यार्क सिंहासन पर बैठे। उन्होंने जार्ज छठे की उपाधि धारण की।

जार्ज छठे १४ दिसम्बर १८६८ में उत्पन्न हुये थे और इनका विवाह १६२४ में स्काटलैंड के लार्ड की लडकी एलिजबेथ से हुआ। इस समय इनके दो लडकियाँ हैं। इनमे बड़ी का नाम एलिजबिथ और दूसरी का नाम रोज़ है। कुमारी एलिजबिथ इस समय सिंहासन की उत्तराधिकारिणी है। सम्राट् जार्ज छठे की आयु का पहला भाग जगी बेडे में व्यतीत हुआ। मई १६३७ में लन्दन मे इनका राज्याभिषेक बडे समारोह से मनाया गया। आशा है कि १६३८ मे दिल्ली में इनका राज-दरबार होगा।

जार्ज छठा

प्रश्न

१. १६२१ से लेकर असहयोग-आन्दोलन का वर्णन करो।

२. इंडियन नेशनल कांग्रेस पर नोट लिखो। (प० यू० १६२४)

३. निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध मे तुम क्या जानते हो —

(१) प्रान्तीय गवर्नरों के अधिकार; (२) मन्त्री-मण्डल, (३) लेजिस्लेटिव कौंसिल,

यह भी बताओ कि इनके क्या क्या कर्तव्य हैं? (प० यू० १६२७)

४. लेजिस्लेटिव असेम्बली पर नोट लिखो। (प० यू० १६२२)

५. हिन्दू-मुसलिम संगठन और महात्मा गान्धी पर नोट लिखो। (प० यू० १६२८)